एजन्टों की आवश्यकता।

'सत्य-ग्रंथ-माला' के प्रचार की देश में बड़ी जरूरत है। भारत के नगर नगर, ग्राम ग्राम में इसके एजन्ट चाहियें। हमने अब यह नियम कर दिया है कि पुस्तकें केवल नगद दाम पर भेजी जायें, और एक सौ रुपये की पुस्तकों पर चालीस का कमीशन दिया जाए। सौ रु० से कम की पुस्तकों पर कमीशन नहीं मिलेगा। निर्धन विद्यार्थियों के लिये यह बड़ा अच्छा अवसर धन कमाने का है। वे घूमफिर कर हमारे ग्राहक बढ़ा सक्ते हैं और हम उनको १०० रुपये के ग्राहकों पर चालीस रुपया दिया करेंगे। एक पन्थ दो काज। शुद्ध साहित्य का प्रचार भी कीजिए और धन भी कमाइए। ग्राहक लोग हमारे आफिस में रुपया भेजें और एजन्ट का नाम लिख दिया करें। हम तीन के महीने एजन्टों को रुपया भेज दिया करेंगे। यह रिआयत केवल निर्धन विद्यार्थिओं के लिए है। देश हितैषी पुस्तक विक्रेताओं को हमारे ग्रंथों का प्रचार बढ़ाना चाहिये।

वी. पी. पारसल का खर्च ग्राहकों के जिम्मे होगा।

प्रार्थी—

मैनेजर सत्य-ग्रंथ-माला आफिस,

बनारस सिटी

❀ विषय सूचि ❀

प्रार्थना ।

हे जगदीश जगत्पिता प्रभो ! आप ही इस दुखी देश का क्लेश हरनेवाले हैं । नाथ ! कृपा कीजिए कि इस देश के बच्चों को अपने अधिकारों का ज्ञान हो। वे अपने जीवनोद्देश्य को समझें । हम में आत्मिक बल आवे ताकि हम अन्याय को दूर करने पर कटिबद्ध हों । स्वामिन् । हम आज स्वार्थ वश हो एक दूसरे का टुकड़ा छीन रहे हैं; एक दूसरे का गला काट रहे हैं। देश के बच्चे देश के प्रति विश्वास घात कर रहे हैं । हे दीनबन्धो ! हमारे हृदय शुद्ध कीजिए ; हमारी कायरता दूर भगाइए । हम आपका ही सहारा पकड़ें, आप को ही एकमात्र अपना शासक मानें; आपके नियमों को सर्वोपरि जानें ।

स्वामिन् ! इस बालक ने आपकी आज्ञा से ही यह काम उठाया है । प्रभो ! मैं अयोग्य, निर्बोध हूं। मेरी भुजा पकड़िए । पिता ! मुझे रास्ता दिखाते जाइए । मैं केवल आपको ही अपना नेता, अपना राजा, अपना मालिक, अपना सर्वस्व समझता हूं । आपकी आज्ञा मुझे शिरोधार्य्य है। ओ३म् शम्।

सत्यदेव ।

भेंट।
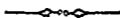
स्वर्गीया माता!

आपने इस बालक को बचपन से ही स्वतं-त्रता की शिक्षा दी थी। आपके ऋण से मैं कभी उऋण नहीं हो सकता। आपके उप-देश मेरे हृदय पर लिखे हुए हैं। आपकी कुछ भी सेवा मुझ से न बन सकी। परन्तु जननी, जो कुछ प्रण मैंने आपसे किया था उसको मरते दम तक पालन करूंगा।

आपका पुत्र
सत्यदेव।

भूमिका।

मनुष्य को ईश्वर ने क्यों पैदा किया ?

क्या उसका यह अभिप्राय था कि मनुष्य जगह जगह मारा मारा फिरे ? क्या उसका यह मतलब था कि मनुष्य भूख से तड़प तड़प कर प्राण दे। यदि उसकी यही इच्छा थी, और इसीलिये उसने मनुष्य को उत्पन्न किया है तो हम ऐसे परमात्मा को दयालु नहीं कह सकते। यदि परमेश्वर ने मनुष्य के जीवन को एक बोझा ही बनाया है जिसको लिये लिये वह दुनिया में भटकता फिरे, कहीं बैठने को ठिकाना न मिले; जहां जाय वहीं गालियां खाय; जिधर नज़र उठावे उधर दुख ही दुख दिखाई दे; यदि इसीलिये परमात्मा ने मनुष्य को पैदा किया है तो उसका सृष्टि रचना व्यर्थ होजाता है। क्योंकि अधिकांश मनुष्यो के लिये यह ससार नरक के समान है, जिस नरक में वे केवल दुख उठाने के लिये आते हैं।

क्या परमात्माने मनुष्य समाज को इसलिये संगठित किया है कि यहां पर मुट्ठी भर आदमी सारी मनुष्य समाज पर राज्य करें ? या उसका कुछ मनुष्यों के साथ अधिक प्रेम है कि उसने उनको दूसरों के ऊपर-अधिकांश लोगों के ऊपर प्रभुत्व दे दिया है ? यदि उसकी यही इच्छा है कि मनुष्य

समाज के थोड़े लोग आनन्द उठावें और बाकी दासत्व में पड़े पड़े सड़जावें, तो हम ऐसे ईश्वर को न्यायकारी नहीं मानते।

यदि परमात्मा ने मनुष्य को इसलिये बनाया है कि उसे मेहनत मज़दूरी करने पर भी पेट भर अन्न न मिले, काम करने की योग्यता होने पर भी मज़दूरी के लिये जूतियां चट खानी पड़ें। यदि ईश्वर ने मनुष्य को इसलिये पैदाकिया है कि वह गर्मियों के दिनों में जेठ आषाढ़ की धूप सहता हुआ अनाज पैदा करे और अन्त में उसकी कमाई को निखट्ट लोग आनन्द से उड़ावें। यदि यही उद्देश्य उस कर्ता का मनुष्य के पैदा करने से है तो हम ऐसे प्रभु को दूर से नमस्कार करते है।

यदि ईश्वर ने मनुष्य को इसलिये उत्पन्न किया है कि वह इमान्दारी से जीवन व्यतीत करता हुआ भी धूर्तों के हाथ से कष्ट उठावे; अदालतों में उसके साथ वे बेइन्साफियां हों, कुकर्मी मनुष्य उसके ऊपर अधिपत्य करें। यदि परमेश्वर ने मनुष्य को इसीलिये पैदा किया है कि वह अपने बाल बच्चों का सन्ताप उठावें; उसकी स्त्री को रहने के लिये जगह न मिले; उसको धार्मिक जीवन व्यतीत करने का अवसर भी प्राप्त न हो—यदि ईश्वर ने मनुष्य को इसीलिये पैदा किया है तो हम उस प्रभु को निर्दोष मानने के लिये तय्यार नहीं हैं।

कई एक हमारे महात्मा मित्र हमको यह कहेंगे—"जो

कुछ कष्ट मनुष्य को होता है वह उसके पूर्व कर्मों का फल है, जो कुछ मनुष्य दुख उठाता है वह उसका अपना अपराध है। समाज में जो थोड़े मनुष्य अधिकांश सभ्यों पर प्रभुत्व करते हैं उन्हों ने पिछले जन्मों में अच्छे अच्छे पुण्य किये हैं जो उपदेशक हमको ऐसे ऐसे उपदेश देते हैं उनको मनुष्य समाज के अन्यायों का अनुभव जन्य ज्ञान नहीं। यदि परमात्मा दोषों से रहित है और उसकी बुद्धि में कोई भी त्रुटि नहीं तो वह कभी भी पुष्ट और नीरोग शरीर मनुष्यों को भूख से मरने के लिये पैदा न करता। जन्म से अन्धे मनुष्य को देखकर हम यह कह सकते हैं कि यह उसके पूर्व कर्मों का फल है। परन्तु एक बच्चा जो सुन्दर आरोग्य शरीर लेकर संसार में आता है और बड़ा होकर अपने खाने के लिये भी अन्न नहीं पाता तो इस अवस्था में यह कहना कि यह उसके पूर्व कर्मों का फल है केवल परमात्मा पर लाञ्छन लगाना है। आरोग्य बालक का पैदा होना ही इस बात की सिद्धि करता है कि उसके लिये सब प्रकार के अवसर अपनी ईश्वरदत्त शक्तियों के विकास के लिये मिलने चाहियें। यदि ऐसा नहीं होता तो इसके अर्थ यह हैं कि जिनके हाथों में मनुष्य समाज की बागडोर है, वे उस आरोग्य बालक के हिस्से को आप उड़ा जाते हैं और उसके साथ घोरतर अन्याय करते हैं।

आवागवन के सिद्धान्त की इस प्रकार झूठी व्याख्या करना और सन्मुख होते हुए अन्याय को देखकर पूर्व जन्म का ढ़कोसला जड़ देना—केवल ऐसे ही महात्माओं का काम है जिनकी सर्व साधारण के साथ कोई भी सहानुभूति नहीं। जो केवल अपने ही स्वार्थ को देखते हैं।

मनुष्य समाज के दुखी सभ्यो! आओ, हम आपके दुखों की सच्ची व्याख्या करके दिखलावें। आपके लिये यह नया सन्देशा है। मत समझो कि आपके दुख दूर नहीं हो सक्ते। जो कष्ट आप उठा रहे हैं वह आपके पूर्व जन्मों के कर्म्मोंका अपराध नहीं और न आपके भाग्य ही का इसमें कोई दोष है। परमात्मा तो न्यायकारी हैं। उन्होंने आपको कष्ट सहने के लिये पैदा नहीं किया। उठो! प्रसन्न होजाओ; ईश्वरदत्त सन्देशासुनो। यदि आपने इस पर पूर्णतया विचार किया और इसके अनुसार अपना जीवन बनाया तो यह संसार आपके लिये सुख-दाई होजावेगा। अन्यायी और धूर्त लोगों का नष्ट होगा और मनुष्य समाज के सब सभ्य मित्रता पूर्वक रहने लगेंगे।

यदि अपना, अपने बालबच्चों का, अपनी समाज तथा अपने देश का, और मनुष्य मात्र का भला चाहते हो तो हमारे निवेदन को सुनो। आज हम आपको सत्य सत्य बातें बतलायेंगे। जब आप सत्य को जान लेंगे तभी सत्य आपको बन्धनों से मुक्त कर देगा। इससे पहले नहीं।

अलमोड़ा
२८ एप्रेल १९१२

विनीत
सत्यदेव

मनुष्य क अधिकार।

प्रथम खण्ड।

मनुष्य कर्म्म करने में स्वतंत्र है।

यदि एक छोटे पौधे को किसी बड़े वृक्ष के नीचे लगाया जाए, और यह प्रयत्न किया जाय कि वह फूले और फले, तो ऐसा कदापि भी सम्भव नहीं। वह बड़ा वृक्ष उस छोटे पौधे को बढ़ने नहीं देगा। जो जल वायु उस नन्हे पौधे के लिये दरकार होगा, उसको वह स्वयम् हज़म कर जायगा। यही कारण है कि बुद्धिमान माली बाग़ के बनाने में पौधों की स्वतंत्रता का पूरा ध्यान रखते हैं। वे उनके लिये इतनी जगह छोड़ देते हैं जिसमें उनकी वृद्धि में कोई बाधा न पड़े। वे जानते हैं कि प्रत्येक पौधे को फूलने फलने के लिये स्वतंत्र जल वायु की आवश्यकता है। उसको उतनी जगह दरकार है जिसमें वह अपने हांथ पांव अच्छी प्रकार फैला सके। उसके अङ्ग प्रत्यङ्ग तभी बढ़ सकते हैं यदि उसके लिये अनुकूल भूमि मिले।

जब यह दशा एक साधारण पौधे की है तो मनुष्य का कहनाही क्या। वनस्पति विद्या-विशारद वृक्षों के लगाने और बागों के बनाने में सदा इन नियमों का ध्यान रखते हैं; वे वृक्षों को एक दूसरे से फासले पर लगाते हैं; उनको वे स्वतंत्र छोड़ देते हैं। विचारने का स्थल है कि जब एक साधारण बाग़ का बनाने वाला इन नियमों का इतना ध्यान रखता है तो भला इस संसार रूपी उद्यान का रचने वाला ऐसा मूर्ख होगा कि उसने अपने नन्हे नन्हे पुत्र और पुत्रियों के लिये कुछ भी इन बातों का विचार न किया हो?

अवश्य किया है मनुष्य को ईश्वर ने स्वतंत्र बनाया है। वह काम करने में आज़ाद है। जिस प्रकार की मेहनत मजदूरी वह करना चाहे, यह उसकी अपनी इच्छा पर निर्भर है। परमात्मा की दृष्टि में मनुष्य मात्र बराबर हैं। उसने सब को स्वतन्त्र मानसिक शक्तियां दी हैं, और उनके विकास के लिये सब को बराबर साधन दिये हैं। परमात्मा चाहता है कि मनुष्यों की शक्तियों का विकास स्वतंत्र और स्वच्छन्दता पूर्वक हो। उसके नियम के अनुसार किसी मनुष्य को भी पराधीन होकर काम नहीं करना चाहिये। क्योंकि इसमें मनुष्य की उन्नति में भारी बाधा पड़ती है।

जब एक मनुष्य दूसरे मनुष्य को अपने आधीन कर उससे उसकी इच्छा के विरुद्ध काम लेता है तो वह उसके साथ भारी अन्याय करता है। क्योंकि उस मनुष्य को कोई अधिकार नहीं है कि वह अपने भाई मनुष्य पर अत्याचार करे। दोनों के अधिकार बराबर हैं। दोनों ही कर्म्म करने में स्वतंत्र हैं। यदि वे अपनी इच्छानुकूल कर्म्म करेंगे और एक दूसरे पर धींगा धींगी नहीं चलायेंगे तो दोनों का सम उपकार होता चलेगा। किसी की इच्छा के विरुद्ध उसको अपना दास बना उससे काम लेना उसकी उन्नति को रोकना है, और यह ईश्वरीय नियम के विरुद्ध है। यहां पर हम इतिहास की छाया लेकर इस सिद्धान्त पर विचार करते हैं।

पन्द्रहवीं सोलहवीं सदियों में योरोप की सभ्य जातियों ने गुलामी की प्रथा को आरम्भ किया। अफ्रीका से निरपराध अज्ञानी हबशियोंको पकड़ पकड़ कर भेड़ बकरियों की तरह जहाज़ों में भर नई दुनिया में ले जा, बेचने लगे। इन सभ्य जातियों के लोग यह समझते थे कि हबशी केवल गुलामी के लिये ही पैदा किये गये हैं, उनका ख़्याल था कि हबशी कभी उन्नति नहीं कर सक्ता। वे उनको केवल अपने लिए ही पैदा हुआ समझते थे। समय ने पलटा खाया; इन स्वार्थियोंकी आंखें खुलीं, प्राकृतिक सिद्धान्तों का इन्हें ज्ञान हुआ। तब

कहीं जाकर इन्होंने अपनी भूल को सुधारने का यत्न किया। अपने भाई मनुष्य पर तीन शताब्दियों तक अत्याचार करने का जो प्रतिफल सभ्य संसार को मिला है, इतिहास वेत्ता उससे भली प्रकार परिचित हैं। जिन हबशियों को पशुओं से बदतर समझा जाता था, उनके आज बड़े बड़े स्कूल और कालेज नई दुनियां में स्थापित हैं। हबशियों में अच्छे अच्छे लेखक, कवि, डाक्टर, फिलासफर, तथा व्यवसाई मनुष्य पैदा हुए हैं। यह इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि मनुष्य को ईश्वर ने स्वतंत्र पैदा किया है। जब तक हबशियों को अपनी ईश्वरदत्त शक्तियों के विकास का अवसर नहीं दिया गया था तब तक उन शक्तिओं के अंकुर दबे पड़े रहे। ज्यों ही उनको मौक़ा दिया गया-वृद्धि करने के लिये स्वतंत्र जल वायु मिला, वे अंकुर फल लाये।

इसी प्रकार यदि हम अपने भाइयों को काम करने की स्वतंत्रता दें, उनके गले से फांसी निकाल उनको अपनी उन्नति करने का स्वतंत्र अवसर दें तो वे भी अपनी आन्तरिक शक्तियों केजौहर हमको दिखलावें। हम उनको पशुओं से भी गिरा हुआ समझते हैं और उनको नीचे दबाने के लिये बहुत से घृणित प्रयोगों को काम में लाते हैं।

यहां पर हम अपने उन भाइयों को जिनके साथ इस प्रकार अन्याय हो रहा है प्रेम पूर्वक यह घोषणा देते हैं कि

उनको परमात्मा ने नीच नहीं बनाया। उन्हें अपने आप को सब के बराबर समझना चाहिये। जिस प्रकार की मजदूरीको वे अच्छा समझते हैं उसके करने का उनको पूरा हक़ है। अपनी गर्दन में जो बन्धन वे देख रहे हैं उसको तोड़ने की पूरी चिन्ता उन्हें करनी चाहिये। यदि वे उन बन्धनों को स्वयम् न तोड़ेंगे तो कोई भी उनकी सहायता नहीं करेगा। क्योंकि ईश्वर भी उन्हीं की मदद करता है जो अपनी मदद आप करते हैं। यदि मनुष्य यह चाहे कि कोई दूसरा मेरे बन्धन काट दे तो उसको पहले स्वयम् अपनी शक्ति अनुसार उसके काटने का यत्न करना चाहिये। क्योंकि बिना रोये और चिल्लाये तो बालक भी माता से दूध नहीं पा सक्ता।

मत समझो कि तुम्हारे प्रारब्ध में ही किसी खास क़िस्म का काम करना लिखा है, यह बड़ी भारी भूल है। किसी की प्रारब्ध में दासत्व नहीं लिखा। असल में बात यह है कि स्वार्थी मनुष्य अपने दूसरे भाइयों की अज्ञानता का नाजायज़ फ़ायदा उठाते हैं। हम नहीं जानते कि हमारे अधिकार क्या हैं। यदि हमको अपने अधिकारों का ज्ञान हो, और उनकी रक्षा करना अपना कर्तव्य समझें तो कोई भी हमारे अधिकारों को न छीन सके। आज एक आदमी दूसरे को बेगार में पकड़ कर ले जाता है; खच्चर की तरह उससे काम लेता है। जब अपना काम निकल गया तो उसको छोड़ देता है। बड़ा मूर्ख तो वह

है जो चुपचाप बेगारी की ज़ञ्जीर को पहिन लेता है । यदि वह मनुष्य है तो उसको चाहिये कि वह मरते दम तक उस का विरोध करे। यदि वह ऐसा नहीं करता तो वह परमात्मा की आज्ञा का उल्लंघन करता है। क्योंकि परमात्मा हम सब का पिता है और मनुष्य मात्र आपस में भाई हैं । प्रभु की आज्ञा यह है कि उसकी सन्तान अपनी अपनी शक्तियों के अनुसार स्वतंत्र काम करे । यदि एक भाई दूसरे भाई को ज़बरदस्ती पकड़ उससे मन माना काम लेना चाहता है तो परमात्मा के निकट वह भारी गुनहगार है। ऐसे दुष्ट अन्यायी का विरोध करना ईश्वर का आज्ञा का पालन करना है । जो ऐसा नहीं करते और कष्ट उठाते हैं, यह उन का अपना दोष है।

यहां पर कोई यह प्रश्नकरे कि यदि उस मनुष्य में विरोध करने की शक्ति ही न हो तो वह क्या करे? इस के उत्तर में हम यह कहेंगे कि मनुष्य का जीवन केवल ईश्वरीय आज्ञा का पालन करने के लिये है। मनुष्य कर्मों के फलों का ज़िम्मेदार नहीं, केवल कर्मों का ज़िम्मेदार है। जब परमात्मा ने उसको कर्म करने में स्वतंत्र बनाया है और यह आज्ञा दी है कि बेगारी काम लेनेवाले का विरोध करना चाहिये तो मनुष्य को कदापि भी बेगार रूपी अन्याय को चुपचाप सहन कर लेना उचित नहीं। जीवन एक संग्राम है। यदि कर्तव्य पालने में अस्तित्व भी मिटता हो तो भी परवाह न करनी चाहिये।

कई एक भोले भाले लोग यह युक्ति लगाया करते हैं कि जिसको जितना दुःख मिलता है वह उसकी प्रारब्ध का फल है ऐसे उपदेशकों की सेवा में हम यह निवेदन करेंगे कि प्रारब्ध पर भरोसा करनेवालों को हम कायर, भीरु और नीच समझते हैं। यह उनलोगों के लिये बड़ा अच्छा बहाना है जो खुद कुछ कर नहीं सकते; या यह ऐसे लोगों की फिलासफी है जो दूसरों को नीचे रखना चाहते हैं। जब परमात्मा ने हाथ पैर दिये हैं, बुद्धि दी है तो कोई वजह नहीं कि मनुष्य अपने ऊपर होते हुए अन्याय को चुपचाप सहन कर ले। इतिहास हमको बतलाता है कि ततकालीन धर्म के नेताओं ने हमेशा अन्याय करनेवालों का साथ दिया है क्यों कि इसमें उनकी अपनी आर्थिक सिद्धि होती है। ग़रीबों और अनाथों का साथ देने के लिये बड़ा भारी आत्मिक बल चाहिये। हमारे देश के धार्मिक नेताओं ने ग़रीबों पर अन्याय करने के लिये क़िस्मत का ढकोसला चला दिया है; और इतने पर भी तसल्ली न कर उस अन्याय को वेदों और शास्त्रों से सिद्ध करने को तय्यार हो जाते हैं।

पाठक! हम आपसे पूछते हैं कि आपको अपने लाखों भाइयों से ज़बरदस्ती काम करवाने का क्या हक़ है? क्या वे आप की तरह मनुष्य नहीं हैं? क्या परमात्मा ने उन को आप की तरह कर्म करने में स्वतंत्र नहीं बनाया? यदि उनके

अंदर भी आप जैसी आत्मा है और वह आत्मा ईश्वर का एक अग है तो आप में और उनमें कोई भेद नहीं। जैसे अमृतपुत्र आप हैं वैसे ही वे हैं। फिर उनके साथ ऐसी ज़बरदस्ती क्यों?

आप शायद यह कहें कि वे नीच घरों में पैदा हुए हैं इस लिये उन को यही काम करना चाहिये। हम आप से यह कहेंगे कि ऐसा नियम या व्यवस्था स्वार्थी समाज की बनाई हुई है। जिन नियमों के बनाने में समाज के उन मनुष्यों का भाग नहीं था वे मनुष्य कभी भी उन नियमों में बद्ध नहीं हो सकते। आप की समाज के ये नियम हमारे जैसे स्वार्थी मनुष्यों ने बैठ कर बना लिये हैं और वे भी उस काल में बनाए गए थे जब कि स्वार्थी लोगों का इन छोटी जातियों पर निरंकुश राज्य था। बल और अत्याचार से भारत के उच्च वर्णों ने हज़ारों वर्षों तक नीच जातियों पर राज्य किया है और उनको कभी भी उन्नति करने का मौका नहीं दिया। पशुओं की तरह इन निरपराध बेकस भारत-सन्तान पर अत्याचार होता रहा है। उस घोर अत्याचार ने उनको आज ऐसा बना दिया है कि वे अपने आप को मनुष्य भी नहीं समझते। हम यह पूछते हैं कि भारत के लोगों को क्या अधिकार है कि वे अपनी समाज के छः करोड़ मनुष्यों पर इतना घोर अन्याय करें? उनको इस भूमि पर ऐसा ही हक़ है जैसा कि हम को। भारत उन की ऐसी ही माता है जैसी कि

हमारी। हमारी तरह वे भी कर्म करने में स्वतंत्र हैं। यदि उन को मौक़ा दिया जाय, उन को ऐसे ही अधिकार प्राप्त हों, उन के लिये ऐसे ही स्कूल हों तो उन में भी उत्तम लेखक, कवि और योग्य पुरुष पैदा हो सकते हैं। जब अफ़रीका के हबशियों की सन्तान उच्च शिक्षा ग्रहण कर गोरी जातियों के तुल्य हो सकती है तो हमारे ये छः करोड़ भाई उत्तम शिक्षा ग्रहण कर भारत माता के योग्य पुत्र क्यों नहीं बनेंगे।

कोई हम से यदि यह प्रश्न करे कि अगर नीच जातियों को कर्म करने में स्वतंत्र छोड़ दें तो फिर इनका धंधा कौन करेगा? उत्तर में हमारा निवेदन यह है कि जैसे अमरीको और यूरोप में वहां की समाज ने इस प्रश्न को हल कर लिया है वसेही हम भी कर सकते हैं। वहां पर मनुष्यको कर्म करने की स्वतंत्रता है। जो जिस काम को अच्छा समझता है वह उस काम को करता है। इस न्याय संगत सिद्धान्त के अनुसार योग्य अयोग्य की छांट हो जाती है; मैले कामों की संख्या घटाई गई है और उन का ऐसा वैज्ञानिक प्रबध किया गया है कि उस श्रेणी के लोगों की ज़रूरत ही नहीं रही। जहां थोड़ी बहुत है भी, वहां पर ऐसे काम करनेवालों को बहुत ज्यादा मज़दूरी मिलती है और उनके साथ गुलामों जैसा बरताव नहीं किया जाता। वे जब चाहें तभी उस काम को छोड़ सकते हैं। क्योंकि न्याय यह कहता है कि हर एक मनुष्य

को काम करने की स्वतंत्रता होनी चाहिये तभी वह अपनी स्वेच्छानुकूल मज़दूरी ले सकता है।

पर हा! इस अभागे देश में तो अन्यायी समाज ने प्रत्येक मनुष्य की स्वतंत्रता छीन उस को खूंटे से बांध दिया है। उस बिचारे को उस खूंटे के इर्द गिर्द घूमने की ही आज्ञा है। यदि कोई उस बन्धन से मुक्त होने की चेष्टा करता है तो धर्म्म के नेता लोग उसका गला दबाने के लिये झट तय्यार हो जाते हैं। उस के विरुद्ध घृणित से घृणित आक्षेप लगाने को उद्यत हो जाते हैं। यही कारण है कि बड़े बड़े सामाजिक आन्दोलन करने वालों ने भी उन पराधीन मनुष्यों के प्रति कोई सहानुभूति नहीं दिखलाई। सामाजिक आन्दोलन करने वाले इस प्रश्न को छेड़ते हुए डरते हैं। उन में इतना आत्मिक बल नहीं कि वे संकीर्ण हृदय उच्च वर्णाभिमानी सभ्यों का विरोध कर सकें। वर्णों के बंधन ऐसे ज़बरदस्त हैं कि वे सुधारकों की कुछ पेश नहीं जाने देते। परिणाम यह हुआ है कि अब तक भारत के नेता सामाजिक अन्यायों को रोकने के लिये कुछ भी नहीं कर सके।

इस प्रश्न को यदि हम दूसरी प्रकार विचार करें और यह मान भी लें कि लोग अपनी खुशी से इन कामों को करते हैं तो इस पर हमारा निवेदन यह होगा कि इन को बहुत ज़्यादा तनख़ाह देनी चाहिये। यह सभी लोग जानते हैं कि

कठिन काम के लिये अधिक मज़दूरी चाहिये। फिर क्या वजह है कि ऐसे मुश्किल काम करने वालों को सब से कम मज़दूरी मिलती है? और यदि ये अधिक मज़दूरी मांगें तो कोड़ों से उनकी ख़बर ली जाती है। यह गुलामी नहीं तो और क्या है? यदि आज इन लोगों को काम करने की स्वतंत्रता हो तो हम लोग कभी भी इन बेचारों पर ऐसा अत्याचार न कर सकें। इन दीन भाइयों ने अधिक मज़दूरी के लिये कई बार सत्याग्रह की है, मगर कौन सुनता है। इनको तो मनुष्य समझा ही नहीं जाता।

अब हमको बिचारना यह है कि यदि समाज के सब सदस्यों को काम करने की स्वतंत्रता मिल जाय तो उसका असर समाज पर क्या पड़ेगा? हम बतला चुके हैं कि प्रत्येक मनुष्य में भिन्न भिन्न प्रकार की शक्तियां हैं। यदि सबको काम करने की आज़ादी दी जाय तो इन शक्तियों का स्वाभाविक विकास होने लगेगा। नये ख़यालात, नये लेखक, भांति २ के आविष्कार तथा सामाजिक ऐक्यता की वृद्धि के सामान बहुत शीघ्र उपस्थित हो जांय। आज जो कठिनाइयां हमारे सामने हैं वे बहुत शीघ्र दूर हो सकें। समाज में जो संकीर्ण, क्षुद्र और नीच भाव भरे हुए हैं वे दूर होने लगें। मनुष्यत्व, जिस का अभाव हम समाज में देखते हैं, उस की पूर्ति हो जाय। हर एक सभ्य, समाज की उपयोगिता

बढ़ाने का यत्न करे। हर एक सदस्य समाज के कामों में दिलचस्पी ले। जो उदासीनता हम अपने लोगों में देख रहे हैं वह बहुत शीघ्र दूर हो जाय। समाज में नया जीवन-सञ्चार हो। नये उद्देश्य, नये आदर्श जाति के सामने आ जांए। यह सुस्ती और काहिली, जिस ने हमारी हड्डियों में घर कर लिया है, धीरे २ निकलने लगे। काम करने की योग्यता बढ़े और समाज में अमली जीवन आवे। भला जिस समाज में काम करने की स्वतंत्रता नहीं है वहां [illegible] का आदर्श ही क्या हो सकता है? मानसिक शक्तियों को इस प्रकार की सामाजिक व्यवस्था ज़ंग लगा देती है, और उच्च वर्णों के सदस्यों को निकम्मा कर देती है। किसी भी समाज की उन्नति नहीं हो सकती जिसका दारोमदार मनुष्यकी अपनी योग्यता पर न हो और वह योग्यता कभी भी उन्नति शील नहीं हो सकती जबतक, कि उसकी नींव काम करने की स्वतंत्रता के सिद्धांत पर न रक्खी जाये।

आहा! काम की स्वतंत्रता में कितने उच्च गुण हैं!

समाज के प्रत्येक व्यक्ति को बराबर समझ उसको उसकी प्रकृति के अनुसार स्वतंत्र छोड़, उसके साथ सहानुभूति करना, कितने महत्व की बात है। शान्ति के राज्य की स्थापना करने के लिये यह अधिकार एक मूल मंत्र है। इसी से सामाजिक उन्नति का प्रारम्भ होता है।

प्रत्येक मनुष्यको अपनी रुचि के अनुकूल धंधा इख्त्यार करने की आज्ञा देना मानो उसके लिये उन्नति का द्वार खोल देना है। जिस कार्य्य में मन लगता हो उसके करने में कैसा आनन्द आता है। तबीयत कैसी प्रसन्न रहती है। प्रसन्न चित्त पुरुष को ही जीवन का सच्चा सुख मिल सका है। कठिन से कठिन कार्य्य भी बड़ी आसानी से हो जाते हैं यदि करनेवालों का उनमें जी लगता हो। इसके विपरीत स्वेच्छाविरुद्ध काम एक बोझ है। जब समाज किसी मनुष्य पर अप्रसन्न होती है तो वह उसके साथ क्या व्यवहार करती है ? समाज उसको जेलखाने में भेज देती है। जेलखाना क्या है ? वहां मनुष्य स्वेच्छानुकूल कर्म नहीं कर सका। बस और वहां है क्या ?

बड़ी से बड़ी सज़ा जो मनुष्य को मिल सकी है वह उसकी कार्य्य स्वतंत्रता का छीन लेना है। जेलखाने में खाना मिलता है, सोनेका सामान है, रहने को कमरा है, मगर वह कौन सी वस्तु है जिसके छीन लेने से मनुष्य को अत्यन्त कष्ट होता है ? वह केवल काम करने की स्वतंत्रता है। भारत में आज करोड़ों लोगों की कार्य्य-स्वतंत्रता समाज ने छीनी हुई है। उनको एक खूंटे से बांध दिया गया है। बिना किसी अपराध के उनको दण्ड दिया जा रहा है। मगर क्या कोई है जो उनको

पुकार सुने? गाओं, गाओं घूमिये। देखिये किस प्रकार अन्याय हो रहा है। ग़रीब लोगों को पकड़ पकड़ कर ज़बरदस्ती उनसे बार बरदारी ढोने का काम लिया जाता है, मगर है किसी धार्मिक नेता के कानपर जूं रेंगती? एक साधारण सा अफ़सर आता है उसका इशारा पातेही पटवारी लोग गाओं वालों को पकड़ मंगवाते हैं उनसे दिन रात काम लेते हैं। वे रोयें चिल्लायें मगर कौन सुनता है। कोड़े पड़ते हैं, मुश्कें बांधी जाती हैं; गालियाँ मिलती हैं। उन बेचारों ने क[illegible]पराध किया है? कुछ नहीं।

अन्त में हम अपने दुखी भाइयों से निवदन करते हैं कि वे अपनी तकलीफों को दूर करने पर स्वयं कटिबद्ध हो जांय । सहित साधन में वे अपने आपको किसी के आधीन न समझें । यह नीच होने का ख़्याल जो उनके दिल में बैठा हुआ है और जिसने उनकी कार्य्य स्वतंत्रता छीनी हुई है उसको वे शीघ्र अपने मन से निकाल दें । यदि एक प्रान्त में उनके साथ समाज के लोग अन्याय करते हैं, और वे वहां अपना जीवन निर्वाह ठीक तरह नहीं कर सकते तो वे दूसरे प्रान्तों में जा बसें । किसी भी उपदेशक के झूठे क़िस्मत के ढकोसले न सुनें, बल्कि अपनी उन्नति का कारण केवल अपने आपको ही समझें और यह बात अपने हृदयोंपर लिखलें कि परमात्मा ने मनुष्य मात्र को स्वतंत्र बनाया है । जितना अन्याय समाज में होता है वह ईश्वर कृत नहीं बल्कि मनुष्य रचित है; और उनको पूरा अधिकार उन नियमों के तोड़ने का है जिनके बनाने में उनकी स्वीकृति नहीं ली गई है ।

"There is no low nor high before God"

--Satya

"The social injustice is due to man's selfishness."

द्वितीय खण्ड।

स्वत्वाधिकार।

भारतवर्ष के लोग कर्म के सिद्धान्त को मानते हैं और बड़े अभिमान से यह कहा करते हैं कि:—

" जो जैसा बोता है वैसाही वह काटता है। "

क्या यह सत्य है ? क्या जैसा हम बोते हैं वैसा ही काटते है ?

आइये, हम आपको खेतों में ले चलें। जलती धूप में काम करने वाले कृषकों की दशा दिखलावें। उनसे पूछिये कि क्या जितनी वे मेहनत करते हैं उतना ही फल उनको मिलता है ? पूछिये, पूछिये, घबराते क्यों हैं। जिन सिद्धान्तों को आप अटल समझते हैं, जिनका आप को इतना अभिमान है, जिनकी सत्यता सिद्ध करने के लिये आप दूसरों का दमाग़ चाटा करते हैं ज़रा उनका असली पहलू तो देखिये। इन किसानों से पूछिये कि क्या उनको उनकी मेहनत का फल मिलता है ?

वे आपको बतलायेंगे कि जितनी वे मेहनत करते हैं उसका दसवां भाग भी उनको नहीं मिलता। फिर नौभाग कहां जाते हैं? "कर्म प्रधान" की चिल्लाहट करने वालो! व्याख्यानों में मेज़ तोड़ने वालो! बतलाओ तो सही कि किसानों के परिश्रम का फल उनको क्यों नहीं मिलता? आपकी कार्मिक थ्यूरी के ढ़कोसले कहां गये? वे ढ़कोसले मूर्खों की आंखों में धूल झोंकने के लिये हैं। यदि नहीं, तो बतलाओ कि किसानों के पसीने की कमाई कौन उड़ाता है?

इसका उत्तर देते हुए आपकी ज़बान बन्द हो जाती है; मुंह से बोल नहीं निकलता। कैसे निकले? आपने तो मूर्खों को ठगने के लिये यह झूठा जाल रचा है, यह बेतुकी फिलासोफी बनाई है। आपका धर्म्म 'अन्याय' करना है और ग़रीबों को लूटना है। इतने पर ही शान्ति नहीं बल्कि अपने धार्मिक ग्रंथों से अन्याय की पुष्टि करते हो। यदि आपके पास हमारे आक्षेपों का कोई जवाब है तो क्यों नहीं उसे किसानों को बतलाते ताकि वे बेचारे अपने कर्मों का फल पा सकें!

सत्य तो यह है कि आपके पास इसका उत्तर है ही नहीं। यदि होता तो आज हम यह भयानक दृश्य, यह घृणित व्यवस्था न देखते। मेहनत मज़दूरी कोई करता है

और फल दूसरा उड़ाता है । लहू पसीना एक करने वाले खाने के लिये तरस रहे हैं और निखट्टू, निकम्मे आलसी, धूर्त बैठे चैन करते हैं । समाज में उन्ही की पूजा होती है । उपदेशक लोग भी उन्ही के गीत गाते हैं, उन्हीं की तान उडाते हैं, क्योंकि उन्हीं से दक्षिणा मिलती है । ग़रीबों, दुखियों की सुध ले तो कौन ले ! बड़ा भारी अहसान यदि करेंगे भी तो अनाथों के लिये अनाथालय खोल देंगे । भला उससे क्या लाभ ? यही कि धर्म के उपदेशकों को निखट्टुओं की तारीफ के पुल बांधने का मौक़ा मिल जाय । यह इनके कर्म की फिलासोफी का फल है कि जाति की जाति भिखमंगी हो रही है । अनाथालय खोले जा रहे हैं, सबको भिक्षा पर निर्भर रहना सिखाया जा रहा है । इस प्रकार भिक्षावृत्ति पर कबतक गुज़ारा होगा ? इस प्रश्नके सोचने तक की बुद्धि नहीं ।

समाज के दुखी सभ्यो ! जिन महात्माओं पर आपने विश्वास किया है वे आपके विश्वास का घात कर रहे हैं । वे आपको दूसरों के हाथ बेच रहे हैं । कृपाकरके चेतिये और हमारे निवेदन को सुनिये ।

हमने आपको बतलाया कि मनुष्य कर्म करने में स्वतंत्र है । अब हम आपको आपका दूसरा अधिकार बतलाते हैं । ईमान्दारी से परिश्रम कर जो कुछ आप कमाते

हैं यह आपका है। उसपर आपका स्वत्व है। वह आपकी अपनी जायदाद है; उसपर आपका अधिकार है उसमें किसी दूसरे का हक़ नहीं। परमात्मा ने मनुष्य को स्वतंत्र बनाया है और यह कहा है कि उसके दिये हुए भोगों में मनुष्य का उतना ही भाग है जितना वह अपने परिश्रम से न्यायानुकूल पैदा करता है—न इससे ज़ियादा, न इससे कम। किसी मनुष्य को दूसरे की कमाई पर कोई अधिकार नहीं। जब परमात्मा ने मनुष्य को कर्म करने में स्वतंत्र बनाया है तो इस के अर्थ हीं यह हैं कि हर एक व्यक्ति को बराबर अवसर ईश्वरदत्त भोगों के भोग का मिले। जब कुछ व्यक्ति विशेष भोगों के उत्पन्न करने वाले साधनों को सम्भाल लें और दूसरों को मेहनत मज़दूरी करने पर भी पेट भर अन्न न मिले तो फिर "काम की स्वतंत्रता" इस वाक्य के कुछ अर्थ नहीं रह जाते। यह शब्द, ही निकम्मे हो जाते हैं। ऐसी स्वतंत्रता तो गुलामी से भी बदतर है। इसमें तड़प २ कर प्राण देने पड़ते हैं। जब काम की स्वतंत्रता है तो इसके साथ ही सत्य सिद्धान्त यह है कि मनुष्य का स्वत्व उसी पर हो सक्ता है कि जिसको उसने अपने परिश्रम से पैदा किया है। जो दूसरों के पसीने की कमाई को साम, दाम, दण्ड, भेद आदि छल बल से ले लेते हैं, हमारी परिभाषा

लोगों में सिकन्दर महमूद, नादिर, आदि नाम प्रसिद्ध हैं। इन लोगों ने दूसरों के स्वत्वों को छीन भूमि पर अपना निरंकुश प्रभुत्व जमाया था। ऐसे विजेताओं को हम मध्यम श्रेणि के लुटेरे कहते हैं। क्योंकि किसी एक व्यक्ति को कोई अधिकार नहीं कि वह लाखों भाइयों का टुकड़ा छीन उन का स्वामी बन बैठे। उस की आवश्यकताओं के अनुसार न्याययुक्त परिश्रम द्वारा जो धन उसे मिलता है उसी पर उस का स्वत्व हो सकता है अधिक पर नहीं।

३ य—समाज में ऐसे सदस्य जो अधिकांश भूमि के स्वामी हैं और जिन्हों ने अपने परिश्रम से उस का स्वत्व प्राप्त नहीं किया, वे भी समाज के हितचिन्तक नहीं हैं और उन का स्वत्व भी न्यायानुकूल नहीं हो सकता।

४ र्थ—ऐसे लोग जो बेइमानी रिश्वत तथा अन्य अनुचित तरीकों से जीवन निर्वाह करते हैं उन को हम सभ्य लुटेरे समझते हैं।

५ म—ऐसे भाई जो बड़े कारखाने खोल, पुतलीघर कायम कर, लाखों के वारे न्यारे करते हैं–जो गरीब मज़दूरोंको जीवन–निर्वाह मात्र देते हैं उन को भी हम उसी श्रेणि में गिनते हैं।

६ ष्ठ— ऐसे ज़िमींदार, जो बड़ी बड़ी जमीनों के स्वामी हैं– जिन का समय ताश शतरंज आदि निकम्मे कामों में

गुज़रता है, वे भी महान पाप के भागी हैं। वह आमदनी जिस को वे उड़ाते हैं, हरगिज़ भी उन की नहीं है। बल्कि उस पर सच्चा स्वत्व उन कृषकों का है जो भारी तपस्या कर अनाज पैदा करते हैं।

यह छः प्रकार के अन्याय युक्त परिश्रम का दिग्दर्शन मात्र हम ने करा दिया है। पाठक महाशय, अन्याय रूपी परिश्रम का यहीं पर अन्त न समझिए। आप अपनी बुद्धि द्वारा अधिक विचार सकते हैं। हमारा काम केवल आप को मार्ग दिखा देने का है। हम सिर्फ यह चाहते हैं कि आप के मन से क़िस्मत की फिला सफी का प्रभाव उठ जाय और आप समाज के सभ्य और असभ्य चोरों को पहिचानने लगें। अभी तक आप केवल निकृष्ट दर्जे के असभ्य डाकुओं को पहचानते हैं। आप को यह सिखलाया गया है कि समाज में ग़रीब अमीर अपने पूर्व जन्म के कर्मों द्वारा होते हैं। यह अव्वल दर्जे की गप्प है। नव्वे फी सदी धनिक लोग अपने दूसरे भाइयों के स्वत्वों को छीन कर धनवान बने हैं और वे भारी दण्डनीय हैं। समाज में जो कुछ प्रतिष्ठा आप उन की देख रहे हैं वह केवल मूर्खता के कारण है। समाज के अधिकांश सदस्य अपने अधिकारों को नहीं जानते। उन के गुरु लोग उनको अधर्म की शिक्षा देते हैं। वे बतलाते हैं कि निर्धनता पूर्व जन्म के पापों का

फल है। निश्चय जानिए यह बात सरासर झूठ है। सत्य तो यह है कि समाज के इने गिने स्वार्थी लोगों ने धन पैदा करने के साधनों को अपने वश में कर लिया है और कई एक ऐसे दलाल मुकर्रिर कर लिए हैं जो सर्व साधारण को उल्टी पट्टी पढ़ा उन को पूर्व जन्म की कथा सुना मूर्ख रखते हैं। यही कारण है कि हमारे कई एक प्रान्तों में तीन तीन आने की मज़दूरी लेकर काम करने वाले सन्तोष किये बैठे हैं। स्मरण रखिए, यह सन्तोष उन की मृत्यु है। यदि उन को यह मालूम हो कि पूर्व जन्म का सिद्धान्त ग़लत है और निर्धनता ईश्वर-दत्त पदार्थ नहीं, तो वे अवश्य ही अपनी दशा सुधारने का यत्न करें। इस समय तो वे केवल यह समझते हैं कि ईश्वरेच्छा ही उन को दुःख में रक्खे हुए है। और, चूंकि पूर्व जन्म किसी का देखा हुआ नहीं, न ही उस की कुछ जांच की जासकती है इस लिए मूर्खों को ठगने और उन का मुंह बन्द करने की यह बड़ी अच्छी फिलासफी है कि उन को पूर्व जन्म के गढ़े में ढकेल दिया जाय जहां से वे बेचारे कभी भी न निकल सकें। इसी झूठी गप्प के आधार पर आज इस देश में अन्याय का राज्य है। धर्म के नेता लोग अपने उपदेशों और कथाओं में सदा शान्ति शान्ति का उपदेश दिया करतेहैं। इन्होंने ऐसे ऐसे सिद्धान्त घड़े हैं जिनके जाल से निकलना सर्व साधारण के लिए कठिन हो गया है। आज यदि हम

किसी मजदूर को यह कहते हैं कि "जो कुछ मेहनत तुम करतेहो, उससे उत्पन्न हुए धन परतुम्हारा अधिकांश अधिकार है"-तो यह बात उस की समझ में नहीं आती। वह सोच नहीं सकता कि स्वत्वाधिकार क्या वस्तु है। हजारों वर्षों के अन्याय और धार्मिक गोरख धन्धे ने उसको पशुवत बना दिया है। वह बहकी बहकी बातें कर यह कहता है-"यह तो ब्रह्मा की सृष्टि है। यदि इस में अमीर गरीब न हों तो सृष्टि कैसे चले"-मानों सृष्टि के चलाने का सारा भार उस ने अपने ऊपर ले लिया है

समाज के नेताओ! क्या यह दशा करुणा से भरी हुई नहीं है? समाज के अधिकांश भाग को आप के उपदेशों से लकवा मार गया है। देश के बच्चों के चेहरों पर मुरदनी छाई हुई है। वे उद्योग, परिश्रम की बात समझ नहीं सकते। उनका जीवन कोल्हू के बैल की तरह है। उनका कोई उद्देश्य नहीं; कोई जीवन नहीं। उनको गढ़े से निकालने का यत्न कीजिए, वे निकलना नहीं चाहते। उनके बन्धन काटिये, वे बन्धनों में जकड़े रहना चाहते हैं। क्या ऐसी हीन दशा कभी किसी जाति की हुई होगी? हे नाथ! हे नाथ!

स्वत्व! भारत सन्तान के लिये यह नया शब्द है आज बीसवीं शताब्दी में स्वत्वाधिकार की महिमा इस

फल है। निश्चय जानिए यह बात सरासर झूठ है। सत्य तो यह है कि समाज के इने गिने स्वार्थी लोगों ने धन पैदा करने के साधनों को अपने वश में कर लिया है और कई एक ऐसे दलाल मुकर्रिर कर लिए हैं जो सर्व साधारण को उल्टी पट्टी पढ़ा उन को पूर्व जन्म की कथा सुना मूर्ख रखते हैं। यही कारण है कि हमारे कई एक प्रान्तों में तीन तीन आने की मज़दूरी लेकर काम करने वाले सन्तोष किये बैठे हैं। स्मरण रखिए, यह सन्तोष उन की मृत्यु है। यदि उन को यह मालूम हो कि पूर्व जन्म का सिद्धान्त ग़लत है और निर्धनता ईश्वर-दत्त पदार्थ नहीं, तो वे अवश्य ही अपनी दशा सुधारने का यत्न करें। इस समय तो वे केवल यह समझते हैं कि ईश्वरेच्छा ही उन को दुःख में रक्खे हुए है। और, चूंकि पूर्व जन्म किसी का देखा हुआ नहीं, न ही उस की कुछ जांच की जासकती है इस लिए मूर्खों को ठगने और उन का मुंह बन्द करने की यह बड़ी अच्छी फिलासफी है कि उन को पूर्व जन्म के गढ़े में ढकेल दिया जाय जहां से वे बेचारे कभी भी न निकल सकें। इसी झूठी गप्प के आधार पर आज इस देश में अन्याय का राज्य है। धर्म के नेता लोग अपने उपदेशों और कथाओं में सदा शान्ति शान्ति का उपदेश दिया करतेहैं। इन्होंने ऐसे ऐसे सिद्धान्त घड़े हैं जिनके जाल से निकलना सर्व साधारण के लिए कठिन हो गया है। आज यदि हम

किसी मज़दूर को यह कहते हैं कि "जो कुछ-मेहनत तुम करतेहो, उससे उत्पन्न हुए धन परतुम्हारा अधिकांश अधिकार है"-तो यह बात उस की समझ में नहीं आती। वह सोच नहीं सकता कि स्वत्वाधिकार क्या वस्तु है। हज़ारों वर्षों के अन्याय और धार्मिक गोरख धन्धे ने उसको पशुवत बना दिया है। वह बहकी बहकी बातें कर यह कहता है-"यह तो ब्रह्मा की सृष्टि है। यदि इस में अमीर ग़रीब न हों तो सृष्टि कैसे चले"-मानों सृष्टि के चलाने का सारा भार उस ने अपने ऊपर ले लिया है

समाज के नेताओ! क्या यह दशा करुणा से भरी हुई नहीं है? समाज के अधिक,श भाग को आप के उपदेशों से लक़वा मार गया है। देश के बच्चों के चेहरों पर मुरदनी छाई हुई है। वे उद्योग, परिश्रम की बात समझ नहीं सकते। उनका जीवन कोल्हू के बैल की तरह है। उनका कोई उद्देश्य नहीं; कोई जीवन नहीं। उनको गढ़े से निकालने को यत्न कीजिए, वे निकलना नहीं चाहते। उनके बन्धन काटिये, वे बन्धनों में जकड़े रहना चाहते हैं। क्या ऐसी हीन दशा कभी किसी जाति की हुई होगी? हे नाथ! हे नाथ!

स्वत्व! भारत सन्तान के लिये यह नया शब्द है। आज बीसवीं शताब्दी में स्वत्वाधिकार की महिमा हम

अपने देशबन्धुओं को बतलाने लगे हैं । क्या वे हमारी आवाज़ को सुनेंगे ? क्या वे अनहद शब्द के गोरखधन्धे को छोड़ "स्वत्व" इस महत्ता पूर्ण शब्द पर विचार करेंगे ?

प्रायः यह देखने में आया है कि मज़दूर लोग अपने दुखों को भुलाने के लिये मद्यपान की आदत डाल लेते हैं। शराब के नशे में वे अपने घरेलू दुख कुछ काल के लिये भूल जाते हैं। अमरीका के गुलाम हब्शी भी इसी कारण शराब पिया करते थे। भारत सन्तान एक हज़ार वर्ष से दुखी है। इसका कोई देश नहीं, घर नहीं; जगह जगह मारी मारी फिरती है। जिसने पकड़ा उसी ने धर दबाया, जिसने ज़रूरत समझी, उसी ने दूसरोंके हाथ बेच दिया। कैसे कैसे घृणित कार्य्य हमारे पुरखों को करने पड़े होंगे ? कैसी कठिनाइयां उन्हों ने सही होंगी ? उन सबका अनुमान मात्र हम आज की हीन दशा देखकर कर सक्ते हैं। यदि उन दुखी भारतिओं ने अपना दुख भुलाने के लिये 'अनहद की शराब' अथवा "वैराग्य का नशा" पीलिया तो हम उन को अधिक दोषी नहीं ठहरा सक्ते। वे अपना दुख भुलाना चाहते थे। उन्हों ने सर्व साधारण को यह पाठ पढ़ाना आरम्भ किया— "यह संसार नाशवान है। हमारा यहां कुछ भी नहीं है। 'मेरा, मेरा' इस अभिमान को त्यागो"।

आज भी हम यही आवाज़ अपने उपदेशकों के मुंह से सुनते हैं। अलमोड़ा में एक दिन प्रातः काल में अपने कमरे में खटियो पर बैठा पढ़ रहा था। एक साधु चुपचाप कमरे के अन्दर चला आया और नीचे फर्श पर बैठ गया। मैंने उस से पूछाः—

"कहिए, किधर से आना हुआ ?"
"बद्रीनाथ जाने का संकल्प है।"
"आप किधर से आते हैं ?"
"सहारनपुर की ओर से आया हूं।"

मैंने दिल में सोचा कि इनको कुछ देश प्रेम की बात समझानी चाहिए। पांच चार मिनट तक मैंने निवेदन किया भी। आप उत्तर क्या देते हैंः—

"यह सब मिथ्या अभिमान में आप फसे हैं। मेरा, मेरा है क्या! कुछ नहीं। सब मोह जंजाल है। इस से छूटनाही मोक्ष है"

यह फिलासफी सुनकर मैं सन्न होगया। बेइख्तयार मेरे मुंह से निकला—"No wonder we are slaves." थोड़ी देर बाद उस महात्मा ने बद्रीनाथ जाने के लिये मुझ से कुछ आर्थिक सहायता चाही। मैंने उसको किसी प्रकार वहां से रफा दफा किया।

इसी भूठे नशे, मिथ्या वैराग्य का असर आज हम चारों ओर देखते हैं। रेल पर चढ़िये। तीसरे दरजे के यात्रियों की दशा देखिये। बुरी से बुरी गालियां वे सहते हैं। पशुओं से बदतर उनके साथ सलूक होता है मगर क्या मजाल कि उनको कुछ भी स्वत्वाभिमान हो। एक हट्टा कट्टा काबुली गाड़ी में बैठा हुआ सारी बेंच रोक लेता है। दूसरे मुसाफिर खड़े खड़े यात्रा करेंगे। वे अपने दिल को यही कह कर धीरज देंगे:—

"समय ही काटना है; कट जायगा। यहां घर तो बनाना ही नहीं है।"

यह इनका आदर्श है। यह इनके जीवन की फिलासफी है। यदि इनको भान हो जाय कि हम दुनियां में समय काटने के लिए नहीं आए, बल्कि जीवन का आनन्द लेने के लिये आए हैं तो क्या यह उदासीनता, यह सरदमहरी, हम अपने सर्व साधारण में देखें! हरगिज़ नहीं। जिधर देखो उधर मृत्यु ही मृत्यु नज़र आती है—सुस्ती, काहिली, उदासीनता। कहीं जीवन अथवा कर्मवीरता का नाम नहीं। जहां जाते हैं, मार खाते हैं। जो उठता है इन्हीं को पीटता है।

यह सब रहेगा, नहीं नहीं इस से अधिक दुर्दशा होगी जब तक हम अपने इस भूठे नशे को नहीं

उतारते। हम को जीवन का कुछ आदर्श बनाना चाहिए और इसमें दिलचस्पी लेनी चाहिए। यह तभी होगा जब कि हम 'स्वत्व' इसकी परिभाषा समझेंगे। इसका अभिमान करेंगे इसको अपने उद्देश्य की पूर्ति का साधन समझेंगे; इसकी रक्षापर कटिबद्ध होजायेंगे; इसकी हानि को अपनी अप्रतिष्ठा समझेंगे और इसके लिये प्राण न्योछावर कर देना तुच्छ जानेंगे।

जिस समय एक मनुष्य यह सोचने लगता है कि—"यह संसार मिथ्या है, कोई वस्तु स्थायी नहीं; मुझे मरजाना है; जीवन एक स्वप्न मात्र है"—उस समय उस को अपने जीवन में कोई दिलचस्पी नहीं रहती। वह उदासीन होजाता है। संसार की ज़िम्मेदारियां उसको बोझसम मालूम होती हैं। न उस का घरवालों से प्रेम, न उसको जाति का कुछ ख़्याल। उसका देश चाहे रसातल में चला जाय, वह कुछ परवाह नहीं करता। उसे चाहे कोई गालियां दे, चाहे मारे पीटे, उस के लिए सब बराबर हैं। अपने देशबंधुओं का दुख उसके लिए कल्पना मात्र है। देशहितैषिता क्या वस्तु है? यह बात उसके दमाग़ में नहीं घुस सकती। उसकी जन्मभूमि का धन चाहे कहीं का कहीं चला जाय;

उसके करोड़ों भाई चाहे भूख से मर जायें उसको इस का कुछ दुख नहीं होता।

स्मरण रखिये यह वह विष है कि जिसके खाने से मनुष्य का मनुष्यत्व जाता रहता है। धैर्य्य, क्षमा, वीरता, साहस, सत्यता आदि दैविक गुण कभी भी विकासको प्राप्त नहीं हो सक्ते जब तक कि मनुष्य इस विषको अपने शरीर से न निकाल दे। क्योंकि जिस व्यक्ति के सिर पर कोई ज़िम्मेदारी नहीं, जो बोझ उठाने से घबराता है उसके अङ्ग प्रत्यङ्ग कैसे बढ़ सक्ते हैं ? वह अवश्य ही भीरू हो जायगा; विरोधों का सामना करने की शक्ति जाती रहेगी। वह मिलकर काम नहीं कर सकेगा । संघात (organization) से उसे घृणा होगी। ऐसी दशा में ये दैविक गुण भी उसके लिये निकम्मे हो जाते हैं और वह मनुष्यशरीर रखता हुआ भी पशुवत हो जाता है। ज़बरदस्त लोग उसकी नाक में नकेल डाल देते हैं और उसको बन्दर की तरह नचाते हैं । पर वह इस को भी मिथ्या ही समझता है। हा शोक! हा शोक!

* * * * * * * * *

परमात्मा ने मनुष्य को प्राकृतिक पदार्थ इस लिये नहीं दिये कि वह उनसे घृणा करे बल्कि उसका अभिप्राय यह है कि हम लोग उनको यथा योग्य उपयोग में लावें। क्योंकि इन प्राकृतिक पदार्थों की प्राप्ति केवल

परिश्रम द्वारा हो सकी है इस लिये न्याय यह कहता है कि भोगों की व्यवस्था 'परिश्रम' के श्रेष्ठ सिद्धान्तानुसार की जाय।

जो परिश्रम करें; कष्ट उठावें; मेहनत मज़दूरी से न भागें; जो अपनी बुद्धि से भोगों की वृद्धि के सामान पैदा कर, वे मनुष्य ही भोगों के भागी हो सक्ते हैं। जिसको जितना मिले, उसको उसकी मेहनत का फल मिले और वह मेहनत न्यायानुकूल हो। उस व्यक्ति को खाने का हक़ नहीं, जो काम नहीं करता। और ईश्वरदत्त पदार्थों से घृणा करनेवाले को तो समाज में रहने का कोई अधिकार नहीं। जब हम एक पदार्थ को बुरा समझते हैं तो उसका भोग क्यों करें।

अब हमारे देशबन्धु, "स्वत्वाधिकार क्या है?" इस बात को समझ गये होंगे। हम यह चाहते हैं कि समाज में कोई किसी का टुकड़ा न छीने। अपना मेहनत से कमाने वाले की सब प्रतिष्ठा करें। प्रत्येक सभ्य अपने स्वत्व को समझे और यह जान जाय कि समाज के सभ्य और असभ्य डाकू कौन से हैं। इस प्रकार का ज्ञान हमको न्याय प्रचार करने में बड़ी सहायता देगा और हम सामाजिक अशान्ति के मुख्य कारणों को जान सकेंगे। हम को पता लग सकेगा

कि धर्म प्रचार का पवित्र काम समाज की आर्थिक स्वतंत्रता तथा आर्थिक विभाग के सिद्धान्त पर निर्भर है। यदि हम और ज़ियादा गम्भीर विचार करेंगे तो स्वत्वाधिकार के सिद्धान्त की महानता हमारे आत्मा पर अधिक प्रभाव डालेगी। यह एक बीज है जिस से धर्म रूपी वृक्ष की उत्पत्ति और विकास होता है। सब प्रकार की उन्नतिओं के कारण बड़ी आसानी से समझ में आजाते हैं अगर मनुष्य इस अधिकार की महिमा जानलेता है। हम अधिक लिख नहीं सकते क्योंकि काल ऐसा है हमने केवल दिग्दर्शन मात्र अपने विचार प्रगट किये हैं। आशा करते हैं कि हमारे प्रेमी सज्जन अपनी बुद्धि को काम में ला इस अधिकार की महिमा अपने अज्ञानी भाइयों को समझायेंगे।

अब एक प्रश्न रह गया है। यदि कोई जबरदस्ती हमारे स्वत्व छीने तो हमको क्या करना चाहिए ? इसका उत्तर हम अगले खण्ड में देंगे। ध्यान से पढ़िये।

तृतीय खण्ड

स्वत्व-रक्षा

"Self preservation is the first law of Natur
"Resistance to tyranny is an obedience to G

अर्थ

"प्रकृति माता का पहला उपदेश स्वत्व-रक्षा है।"
"अन्याय का विरोध मानो ईश्वरीय आज्ञा का पालन करना है।"

नवम्बर का महीना है। सूर्य्य की खिलखिलाती धूप में बाग़ की सैर करने चलते हैं। यह देखिये, फूलों पर भूरे रंग की मक्खी भिनभिना रही है। यह मधुमक्खी है। उद्योग और परिश्रम से मधुसंचय करती है। देखो! यह उड़ी। कहां जा रही है? अपने छत्ते की ओर। आपके मुंह में पानी क्यों भर आया। आप छत्ते की ओर चलना चाहते हैं? अच्छा चलिये।

आहा! कैसी अच्छी जगह छत्ते के लिये ढूंढ़ी है। देखिये कितनी मक्खियां इसके आस पास भिनभिना रही हैं। ये क्या कर रही हैं? ये अपने स्वत्वकी रक्षा कर रही हैं। यदि कोई: कीड़ा, पतङ्गा, पशु, पक्षी, मनुष्य इनका स्वत्व हरना चाहे तो ये सबकी सब उसपर धावा करेंगी। आप इनसे दूर रहिये; इनको मत सताइये; इन से मत बोलिए, ये आप को कुछ न कहेंगी। प्रकृति माता ने इनको स्वत्वरक्षा के लिये एक डङ्क दिया है। अपनी माता की आज्ञा का ये अच्छी तरह पालन करती हैं। अपने शस्त्र को आवश्यकता पड़ने पर काम में लाती हैं।

यह छोटा सा उदाहरण मनुष्य के बड़े काम का है। यह हमको स्वत्वरक्षा की विधि बतलाता है। मिल कर काम करना सिखाता है। संघात की रक्षा कैसे हो सक्ती है? इसका रहस्य समझाता है। स्वत्व रक्षा की खातर क्या कुछ बलिदान कर देना चाहिये? इस की महिमा भी पूर्ण रूप से बतलाता है।

क्या मन्दबुद्धि मनुष्य मधुमक्खी से उपदेश ग्रहण करेगा?

* * * * * * * *

पिछले दो खण्डों में हमने मनुष्य के दो अधिकार बतलाये हैं—काम की स्वतंत्रता और उससे उत्पन्न हुए

फल पर मनुष्य का स्वत्व । "मनुष्य जो कुछ कमाता है उसका न्यायानुकूल स्वामी वुही है।" यह बात एक साधारण बुद्धि का पुरुष भी बड़ी आसानी से समझ सका है। इसमें कोई लम्बी चौड़ी फिलासोफी दरकार नहीं । मनुष्य के सामने यदि कोई कठिन प्रश्न है तो वह यह है कि—"जो कुछ मनुष्य कमाता है उसकी रक्षा वह कैसे कर सकता है ?" यह प्रश्न है जिसके हल करने में बड़े बड़े सुधारकों को बगलें झांकनी पड़ती हैं । एक ओर समाज के शान्तिप्रिय, साधु-प्रकृति सदस्य ईमान्दारी से जीवन निर्वाह करना चाहते हैं; वे मेहनत मजदूरी कर धन लाभ करते हैं। दूसरी ओर निखट्टू, निकम्मे, आलसी, धूर्त, लुंगाड़े लोग साम, दाम, दण्ड, भेद अथवा अपने शारीरिक बल से साधु पुरुषों को ठग चैन उड़ाते हैं। यह दृश्य अपने सामने है । अपनी दैनिक जीवनचर्य्या में हम ऐसी कई घटनाएं देखते हैं, सुनते हैं । धर्मात्माओं का कोई ठिकाना नहीं–ईमान्दारों को कोई नहीं पूछता । जिधर देखो उधर चलते पुर्जों, झूठे दगाबाजों के वारे न्यारे हैं। रिश्वत का बाजार गरम है । अदालतों में धनाढ्यों की बन आती है; ग़रीब बेचारे निरपराध मारे जाते हैं । उनको कोई नहीं पूछता। रुपया है तो सब कुछ है; नहीं है तो खाओ धक्के !

वह रुपया कहां से आता है ? गाओं में जाइये। वहां रुपया बहुत कम देखने में आवेगा। शहर में रुपया बहुत अधिक दृष्टि गोचर होगा। शहरवाले रुपया कहांसे लाते हैं ? उनके घर में सोने चांदी की खान तो होती नहीं। वे माल बेचते हैं; माल से रुपया मिलता है। माल कहां से आता है ? माल का खज़ाना गाओं हैं। गाओं वाले माल पैदा करते हैं और उसको शहरवालों के हाथ बेच देते हैं। शहरवाले उसको आगे बड़े व्यापारियों के हाथ चलता करते हैं। इस हिसाब से शहरवाले केवल कमीशन एजन्ट ठहरे। मगर यह कभी सुनने में आया है कि मालवालों से कमीशन खानेवाले धनिक हो जाय ? हां होता है जब माल पैदा करने वाले बेवकूफ हो और उनको व्यापारी मण्डी का भाव मालूम न हो; या यह कि वे टेक्स से दवे हुए हों, या यह कि किसी ने उनका स्वत्व छीन उनको जीवन निर्वाह मात्र दे अपना दास बना लिया हो।

आप तो " स्वत्व रक्षा " पर विचार कर रहे थे बेचारे शहरियों पर क्यों टूट पड़े ?

हम किसी पर टूटते नहीं। हम धीरे धीरे अपने उद्देश्य पर आ रहे हैं। हम इस एक उदाहरण से दो मुख्य बातें अपने प्रेमी पाठकों के हृदयों पर अङ्कित कर दिया

चाहते हैं। हमारे भाइयों को यह पता लग जाना चाहिये कि समाज के किसी सदस्य के 'स्वत्वनाश' के दो मुख्य कारण हुआ करते हैं- अविद्या और शारीरिक निर्बलता। सभ्य समाज में, जहां लाठी का बल दिखाना जंगलीपन समझा जाता है, वहां अधिकांश सभ्य अविद्या के कारण अपने अधिकारों अथवा स्वत्वों को खो बैठते हैं। असभ्य समाज में शारीरिक बल को ही प्रधानता दी जाती है। वहां निर्बल का गुज़ारा नहीं, वह केवल दासत्व के लिये ही समझा जाता है। समाज की प्रारम्भिक अवस्था में, 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' वाली कहावत राज्य करती है। वहां ज़बरदस्त का ठेंगा सिर पर लेना ही पड़ता है। इसके विरुद्ध जीवन से हाथ धोना पड़ता है। वहां 'स्वत्व' 'अधिकार' आदि शब्द कुछ अर्थ नहीं रखते; वहां लाठी ही चलती है।

परन्तु यदि दीर्घ दृष्टि से विचार करें तो 'स्वत्व-नाश' अथवा 'अधिकारों की हानि' का मुख्य और एक ही कारण अविद्या है। समाज की प्रारम्भिक अवस्था में अविद्या का राज्य रहता है इस लिये वहां पशु प्रणाली के अनुसार जीवन व्यवस्था होती है। ज्यूं ज्यूं मनुष्य को होश आती जाती है त्यों त्यों उसकी आंखें खुलने लगती हैं। वह तर्क करने लगता है; बुद्धि का उपयोग

" हम अपने मालिक अमरीकनों को क्षमा करते हैं। हमें सहनशील बनना चाहिये । इत्यादि । "

ऐसे भाव उनके मुंह से शोभा नहीं पाते थे। एक ज़बरदस्त बलशाली पुरुष ऐसे भाव उसी समय प्रकट कर सका है जब वह 'स्वत्वरक्षा' संबंधी गुणों पर विजय प्राप्त कर लेता है। इसीलिये यह स्मरण रखना चाहिये कि दैवी गुणों को धारण करने के लिये भी पात्र होना आवश्यक है । कुपात्र के मुंह से इन गुणों की तान बेसुरी मालूम देती है।

अच्छा, हमने यह बतलाया कि स्वत्वरक्षा मनुष्य का धर्म है । अब हम आगे चलकर 'सत्वरक्षा' के भिन्न भिन्न रूपान्तर दिखला कर इसका असली स्वरूप अपने पाठकों को दिखलाते हैं।

कोई भी समझदार व्यक्ति किसी ऐसी समाज का सदस्य होना स्वीकार नहीं करेगा जिसकी व्यवस्था, उसकी स्वतंत्रता, जीवन तथा आनन्द लाभ करने में बाधा डाले । अधिकांश लोग एक मत को छोड़ दूसरे मत को इसी लिए स्वीकार करलेते हैं, क्योंकि उनको अपने मतावलम्बी समाज में जीवन, स्वतंत्रता तथा आनन्द लाभ करने के अवसर नहीं मिलते । मनुष्य एक सामाज़िक सभ्य है । वह ऐसी समाज में रहना चाहता है जहां

भयभीत होने की शिक्षा दी गई है। लट्ठबाजों के आगे सिरझुकानेका उपदेश दियाजाता है। यही कारण है कि स्वत्वरक्षा के इस साधारण रूप में हम अपनी ऐसी गिरी हुई दशा देखते हैं। अपने दैनिक कार्यों में इसी लिये हमको सफलता प्राप्त नहीं होती। हमको स्वत्वरक्षाके स्थानपर 'भय' की शिक्षा दी गई है। उस भय की व्याख्या करनेवाले बहादुरों ने उसको शान्ति, सहन शीलता, क्षमा, नम्रता आदि नई नई पदवियों से विभूषित करदिया है। इसी से आप समझ सकते हैं कि जिन्होंने भयरूपी भूत की ऐसी ऐसी व्याख्या की है तो जिनसे भय होता है उनको पदविया देते समय हमारे धर्मवीरों ने कहां जाकर दमलिया होगा! यह हम नहीं कह सक्ते।

तो क्या शन्ति, सहन शीलता, क्षमा नम्रता, आदि बुरे गुण हैं? शिव! शिव! भला हम ऐसा मान सक्ते हैं। पर हां हमारा यह सिद्धान्त अवश्य है कि इन उपरोक्त दैवी गुणों से वही पुरुष विभूषित हो सकता है जिसमें स्वत्वरक्षा की शक्ति हो—नहीं नहीं, जो उस शक्ति को काम में लाना जानता हो। अफ्रीका के गुलाम हब्शी अमरीका के खेतों में दासत्व करते हुए यह नहीं कह सक्ते थे—

"हम अपने मालिक अमरीकनों को क्षमा करते हैं। हमें सहनशील बनना चाहिये। इत्यादि।"

ऐसे भाव उनके मुंह से शोभा नहीं पाते थे। एक ज़बरदस्त बलशाली पुरुष ऐसे भाव उसी समय प्रकट कर सका है जब वह 'स्वत्वरक्षा' संबंधी गुणों पर विजय प्राप्त कर लेता है। इसीलिये यह स्मरण रखना चाहिये कि दैवी गुणों को धारण करने के लिये भी पात्र होना आवश्यक है। कुपात्र के मुंह से इन गुणों की तान बेसुरी मालूम देती है।

अच्छा, हमने यह, बतलाया कि स्वत्वरक्षा मनुष्य का धर्म है। अब हम आगे चलकर 'स्वत्वरक्षा' के भिन्न भिन्न रूपान्तर दिखला कर इसका असली स्वरूप अपने पाठकों को दिखलाते हैं।

कोई भी समझदार व्यक्ति किसी ऐसी समाज का सदस्य होना स्वीकार नहीं करेगा जिसकी व्यवस्था, उसकी स्वतंत्रता, जीवन तथा आनन्द लाभ करने में बाधा डाले। अधिकांश लोग एक मत को छोड़ दूसरे मत को इसी लिए स्वीकार करलेते हैं, क्योंकि उनको अपने मतावलम्बी समाज में जीवन, स्वतंत्रता तथा आनन्द लाभ करने के अवसर नहीं मिलते। मनुष्य एक सामाजिक सभ्य है। वह ऐसी समाज में रहना चाहता है जहां

के नियम उसकी स्वतंत्रता में बाधा न डाल सकें। लाखों मनुष्य इन्हीं कारणों से हिन्दुओं से मुसलमान, मुसलमानों से ईसाई, ईसाइयों से प्रकृतिवादी होजाते हैं। जहां जिसको अधिक स्वतंत्रता मिलती है वहीं वह चला जाता है। मतों का ऐसा अदल बदल वहीं पर होता है जहां सामाजिक, राज नैतिक तथा धार्मिक अधिकारों में भेद नहीं समझा जाता। जहां मत Religion ही सर्व शिरोमणि गिना जाता है; जहां राजनैतिक नियमों की व्यवस्था भी धार्मिक ग्रन्थों के अनुसार होती है"।

हम चाहते हैं कि इन बातों को विस्तार रूप से अपने देशबन्धुओं के सामने रखें, परन्तु हम ऐसा करने में असमर्थ हैं। एक तो हमारी लेखनी स्वतंत्र रूप से चल नहीं सकी, दूसरे हम अपने विषय को उसकी सीमा तक ही रखा चाहते हैं। हम केवल सामाजिक अशान्ति के कारणों का निदर्शन मात्र कराना चाहते हैं। यदि समाज तथा उसके सभ्य उन कारणों को समझ जांय और उनका सुधार करदें तो सामाजिक उन्नति का चक्र मजे में चलता रहे। क्योंकि, समाज सभ्यों से बनता है इसलिए यदि हम सभ्यों के अधिकार बतलाने में सफलीभूत हों तो भी हमारे उद्देश्य की सिद्धि भले प्रकार हो सकी है। इस लिए "स्वत्वरत्ता" के अधिकार

की व्याख्या करने के लिए हमने इसको तीन रूपान्तरों में विभक्त किया है। अब हम उन्हीं का व्योरा क्रमानुसार लिखकर इस खण्ड की पूर्ति करेंगे—

१म— प्रत्येक मनुष्य को सामाजिक सभ्य होने से सामाजिक भोगों के भोगने का सबके समान बराबर अधिकार है। रेल, तार, बाग, उद्यान, पुस्तकालय आदि जैसे सबके लिए हैं वैसे उसके लिए भी हैं। यदि इसमें कमी कोई त्रुटि हो और उसके साथ बराबर का वर्ताव न किया जाय तो उसका धर्म है कि वह स्वत्व रक्षा करे। लेख, वाणी, शारीरिक बल, जैसा अवसर हो उस के अनुसार उसे अपने स्वत्व की रक्षा करनी चाहिए। यदि वह दुकान पर सौदा लेने जाता है तो वहां उसे अपनी बारी का ध्यान रखना उचित है। ऐसा कभी भी सहन न करे कि अन्य लोग धक्के देकर उस से पहले सौदा ले जांय। हां, बालकों और स्त्रियों की सदा प्रतिष्ठा करे। रेल में जब बैठे तो अपने स्वत्व का ध्यान रखे। कोई लुगाड़ा उसको गाली देकर हटा न सके, और न ही स्टेशन वालों की बन्दर घुडकियों को ही बरदाश्त करे। स्वयं कभी किसी के साथ अत्याचार न करना चाहिए।

"स्वत्व रक्षा" के इस भाग का उपयोग मनुष्य को समाज में रहने योग्य बनाता है। ये रोज़ के काम की

बातें हैं । इनका संबंध हमारी दिनचर्य्या से है । इस लिए 'स्वत्वरक्षा' के इस अंग का पालन करने वाले सज्जन नित्य प्रति व्यायाम किया करें । क्योंकि इसके बिना जीवन निर्वाह नहीं होसक्ता । खाली बातें काम न देंगी । छोटे छोटे बच्चों को बचपनसे ही 'स्वत्वरक्षा' की शिक्षा देनी चाहिए । कोई बदमाश लौंडा उनको पीट न सके । उनको सिखादेना चाहिये कि स्वत्व रक्षा धर्म है और स्वत्व रक्षाके आधुनिक ढंग भी उन्हें सिखाने चाहियें।

२ य—समाज के जब कुछ खास व्यक्ति धन 'उत्पन्न करने के साधनों पर कबज़ा करलें और अन्य सदस्यों के अधिकारों को छीन उन के साथ पशुओं से बदतर व्यवहार करें तो श्रमजीवी मज़दूरों को ऐक्यता कर अपने अधिकारों की रक्षा करनी चाहिये। एक अकेला मज़दूर कुछ नहीं कर सक्ता। वह अपने अधिकारों की रक्षा करने में असमर्थ है । उसको यह निश्चय जान लेना चाहिए कि—"जमात करामात" एक सच्ची कहावत है । संघ में ही बल है । यदि वह अपनी रक्षा चाहता है तो सब के साथ मिलकर, जैसी सबकी राय हो, उसके अनुसार कार्रवाई करे । मज़दूर लोग क्या करें ? यह हम नहीं कह सकते। हम केवल यह कहते हैं कि ऐसी दशा में स्वत्वरक्षा एक अकेला पुरुष नहीं कर सकता। उसको सब के साथ

मिलकर काम करना उचित है। ऐसा ख्याल हरगिज न मन में लावे जिससे अपनी ही स्वार्थ सिद्धि हो। आज मजदूर लोगों की दुर्दशा इसी लिये है कि वे मिलकर काम नहीं करते। इसी कारण वे दो दो, तीन तीन आने के लिए मारे मारे फिरते हैं। एक छोड़ता है दूसरा करने के लिये तय्यार है। बस इसी स्वार्थ से काम चौपट हो जाता है। निर्दयी धनिकों की बनआनी है। वे स्वेच्छानुकूल श्रमजीवियों की खालें उतारते हैं।

यौरप और अमरीका में मजदूर लोग हड़ताल कर अपने स्वत्वोंकी रक्षा करते हैं। उनको कई हद्द तक सफलता प्राप्त हुई है, परन्तु पूरी नहीं हुई। मगर वे उन नुकसों को दूरकर रहे हैं जो उनकी रक्षा के बाधक हैं। वे दिनरात अपने स्वत्वों के बचाव के उपाय सोचते रहते हैं। उन में जीवन है; वे मुरदे नहीं। वे क़िसमत के सहारे नहीं बैठे रहते। वे ज्योतिषियों से मुहूर्त पूछने नहीं जाते। वे धनिकों को ईश्वर के दादा नहीं समझते। वे अपनी स्थिति को जानते हैं; अपने कर्तव्यों को पहचानते हैं। उनको अपना ही स्वार्थ नहीं होता; वे सबके भले की बात सोचते हैं। वे दूसरे के दुखको अपना दुख समझ एक दूसरे की सहायता करते हैं। उनकी बड़ी बड़ी सोसाइटियां हैं; उनके लाखों सभ्य हैं। उनका जत्था बड़ा ज़बरदस्त है। मधुमक्खि-

यों की न्याईं वे मिलकर सामना करते हैं और अपने स्वत्वों की रक्षा के लिये प्राणों को तुच्छ समझते हैं।

प्यारे मज़दूर पेशा भाइयो! अपनी स्थिति को देखो। आप कबतक इस प्रकार दुख सहते रहोगे। उठो, चिन्ता छोडो। अपने स्वत्वों को देखो; अपने अधिकारों को पहचानो। यह जगत आप के लिये भी वैसा ही है। आप जो दुख उठा रहे हैं यह केवल आपकी अपनी अज्ञानता के कारण है। आप स्वत्वरक्षा नहीं करते और "स्वत्व-रक्षा" आप तभी कर सकेंगे जब आप मिलकर काम करना सीखेंगे। प्रभु आपकी सहायता करेगा।

३य—जब किसी व्यक्ति विशेष अथवा समुदाय विशेष को समाज के शिक्षित, धनिक अथवा अज्ञानी सदस्य जन्मदोष दिखलाकर " नीच " का फतवा लगादें तो यह उनका भारी अन्याय समझना चाहिये। वे अपनी विद्या, धन अथवा सामाजिक शक्ति का दुरुपयोग करते हैं। यह उनकी ज़बरदस्ती है। उनके इस अन्याय का विरोध करना ईश्वरीय आज्ञा का पालना है। इसलिये ऐसे अवसर पर वे सदस्य जिनके साथ अन्याय होता है हरगिज़ चुपचाप न बैठें। उनको उचित है कि अपना दल बांध खूब आन्दोलन करें। जैसा समय हो, जिस प्रकार की तरकीब उन्हें सूझे, जैसा ढंग उनके नेता

मुनासिब समझें, उसी के अनुसार उन्हें स्वत्व रक्षा पर कमर बांध लेनी चाहिये। किसी जन समुदाय के कह देने अथवा फतवा पास करने से कोई व्यक्ति विशेष व समुदाय नीच नहीं हो सकता। जिनको नीच कहा जाता है उनको वैसा ही अधिकार अपने अन्यायी भाइयों को नीच कहने का है। ऐसा कदापि न करें जिससे उनका संबंध अपनी समाज से छूट जाए। उनका कर्तव्य है कि समाज के बीच में रहकर, उसके साथ संबंध रखते हुए, अपने अधिकारों के लिए जदोजहद करें। यदि वे दुम दवाकर भाग गये और उन्होंने अपने धर्म को भी छोड़ दिया तो वे भारी भीरू कहलायेंगे और सबके घृणास्पद होंगे; दूसरों के लिये उनका उदाहरण हानिकारक होगा। समाज में रहकर अन्याय का विरोध करना, और अपने भाई सदस्यों को सन्मार्ग पर लाना, उनका कर्तव्य है।

यह भी याद रखना चाहिये कि अधिकार भीख मांगने से नहीं मिला करते। हाथ जोड़ने वाले, पिछलगू मनुष्य, बड़े भारी बुज़दिल हैं-वे समाज के ऐसे कीड़े हैं जिनको पाओंतले रोंदना ही ठीक है। पहले अधिकार लेने की शक्ति पैदा करनी उचित है। किसी को अधिकार, खुशामद, लेक्चरबाज़ी अर्ज़ी पर्चों से

नहीं मिले। जिनको मिले हैं, उन्हें स्वत्व रक्षा की शक्ति प्राप्त करने से ही मिले हैं। स्वत्वरक्षा की शक्ति पैदा करो, अधिकार आपके हाथ में आजायेंगे। समाज के अन्यायी सदस्य उन्हीं पर जुलम करते हैं जिनको वे भीरू, कायर समझते हैं। जो उनके सामने सिर नीचाकर "हां हजूर, हां हजूर" या "हां अन्नदाता, हां अन्नदाता" कहकर चलते हैं। जो शेर के बच्चों की तरह अकड़ कर चलते हैं, जिनके हाथ में बल है, जो अन्याय को एक मिन्ट भी सहन करने को उद्यत नहीं, ऐसे पुरुष सिंहों को कौन डरा सकता है। कौन उनके साथ अन्याय कर सकता है। 'अन्याय' उनसे कोसों भागता है; 'जुलम' उनसे थरथर कांपता है। इस लिये हम अपने अन्याय से पीड़ित भाइयों से निवेदन करते हैं:—

"उठो भाइयो! अपनी शक्तियों को इकट्ठा करो। स्वत्व रक्षा का प्रण करो। अन्याय के दूर करने का यत्न करो। भागो मत। अपना धर्म ईमान मत छोड़ो। वीर बनो। समाज में रहो। समाज में रहकर अपने अधिकारों के लिये युद्ध करो। ईश्वर आपकी रक्षा करेगा। आपको अपने अधिकार मिलेंगे।"

उपरोक्त तीन रूपान्तरों के पाठ से यह विदित हो जायगा कि स्वत्वरक्षा का पालन मनुष्य की अवस्था

पर निर्भर है। कभी उसको इसके लिये अकेले ही युद्ध करना पड़ेगा, कभी अपने साथी सदस्यों के साथ योग- देकर कार्य्य करना होगा। यदि स्वत्व का संबंध उसके अपने साथ है तो उसको स्वयं अपनी लड़ाइयां लड़नी होंगी। यदि वह एक सामाजिक अन्याय है तो उसका प्रतिवाद संघात के बिना हो नहीं सकेगा। यदि उसका संबंध सारे देश से है तो उसका नाश देशवासियों की ऐक्यता के बिना असंभव है, इस लिये जिस व्यक्ति का स्वत्व छिन गया हो उसका कर्तव्य है कि पहले उसके असली स्वरूप को पहचाने। जब उसको व्याधि का निदान ज्ञात हो जायगा तो उसका दूर करना भी बड़ा आसान होगा। हमारे लोग इसी भूल के कारण कष्ट उठाते हैं। वे 'स्वत्व' के असली स्वरूप से अनभिज्ञ होते हैं इसलिये बेचारे ठोकरें खाते फिरते हैं।

इतना कथन करने के बाद अब हम स्वत्वरक्षा के साधनों के संबंध में दो चार बातें लिख देना अनुचित नहीं समझते। समाज जैसा जैसा उन्नत होता जाता है स्वत्वरक्षा के साधन भी वैसेही उन्नत होते जाते हैं। एक समय लोग तीर कमानों से अपनी रक्षा किया करते थे। वह ज़माना दूर चला गया। स्वत्वरक्षा के साधनों में पिछले हज़ारवर्षों से बहुत सी उन्नति हुई है। जो सभ्य अथवा समाज उन्नत साधनों को

छोड़ पुराने जर्जर अस्त्रों से अपनी रक्षा किया चाहता है, उस का संसार में अस्तित्व मिट जाता है। स्वत्व छीननेवाला व्यक्ति अथवा समाज सदा श्रेष्ठ साधनों से सुसज्जित होता है। उसका सामना करने के लिये उस जैसे साधनों का होना आवश्यक है। इस लिये प्रकृति माता हमारे कान में यही उपदेश देती है—

"यदि अपने स्वत्वों की रक्षा करना चाहते हो तो अपने पड़ोसियों जैसा बन जाओ; उनसे किसी बात में कम न रहो। क्योंकि जो सक्षम है उसीके लिये यह संसार है। वही अपनी रक्षा कर सकता है; उसी को जीवन का आनन्द मिल सका है।"

चतुर्थ खण्ड

समाधिकार

"This is God's world and we are all His children."

— Deva Dutt

"Justice to all and privileges to none' should be the motto of every honest man."

अर्थ

यह सृष्टि परमपिता परमात्मा की है और हम सब उसके बच्चे हैं।

प्रत्येक ईमान्दार पुरुष का यह सिद्धान्त होना चाहिये कि समाज में सब के साथ न्याय हो और किसी की रिआयत न की जाय।

भारत के सर्वसाधारण आज अविद्या की गहरी निद्रा में पड़े सो रहे हैं। उनको शिक्षा की आवश्य-

कता है। अनिवार्य्य शिक्षा प्रणाली का प्रबन्ध होना चाहिए। इसके लिये यत्न भी किया जा रहा है। एक बार इसी संबंध में मुझे अपने शिक्षित भाइयों की सभा में जाने का शुभ अवसर प्राप्त हुआ। मैंने भी अपने विचार प्रगट किये और अपने अशिक्षित भाइयों के पक्ष में युक्तिआं दीं। भारी आन्दोलन मचा। कई एक प्रतिष्ठित भाइयों ने मेरा प्रतिवाद किया। उनका मुख्य एतराज़ यह था कि यदि सर्व साधारण में शिक्षा का प्रचार हो जायगा तो नौकर नहीं मिला करेंगे, या जो मिलेंगे वे अधिक वेतन मांगेंगे।

कैसा स्वार्थ से भरा हुआ यह एतराज़ है। कैसे नीच और संकीर्ण भाव इसके अन्तरगत हैं। एक मनुष्य दूसरे मनुष्य को इसलिये शिक्षा देना नहीं चाहता कि वह उसका गुलाम बना रहे। उस की इच्छा यही है कि समाज के अधिकांश सभ्य अशिक्षित रहें ताकि उस को दो दो, तीन तीन रुपये पर नौकर मिल सकें। वाहरे न्याय! इस बेइन्साफी की भी कोई हद है। न जाने ऐसे मनुष्य अपने आपको क्या समझते हैं; उनको कौन सा सुरखाब का पर लगा हुआ है। क्योंकि उन के पास विद्या, धन, शक्ति है, इस लिये वे स्वेच्छानुकूल समाज पर शासन किया चाहते हैं। परन्तु अब ऐसा नहीं

होगा । देश हितैषी सज्जन इस पालिसी के भयानक परिणाम को समझने लगगये हैं । उनको पता लगगया है कि यह स्वार्थ उनका नाश कर देगा और सर्वसाधारण की अविद्या उनको भी साथही ले डूबेगी ।

आओ, हम अपनी अपनी गरजों को एक ओर रख कर समाधिकार के पवित्र सिद्धान्त पर विचार करें । परमात्मा रचित इस मशीन की उपयोगिता को समझने का यत्न करें । उस सर्वज्ञ नियन्ता के महान उद्देश्य का ज्ञान हमको उसी समय हो सकता है जब कि हम अपने निज के स्वार्थों को भुला दें । ' समानता ' शब्द के यथार्थ अर्थों का ज्ञान भी तभी हो सकेगा । यह वह कुञ्जी है जिससे मोक्षरूपी भवन के पट खुल सकते हैं, यह वह जादू की छड़ी है जिसके स्पर्श से मुरदों में जान पड जाती है, यह वह अमूल्य बूटी है जिस से समाज की सब व्याधियों का इलाज हो सकता है । कैसे ? देखिये हम इसपर विचार करते हैं ।

गरमी के दिनों में जब खूब धूप पडती है, सूर्य की रश्मियें वायु मंडल को तपादेती हैं तो ववंडर चलने लगता है और आंधी आती है । विद्वान लोग आंधी, तूफान, चक्रवाह आदि के कारणों को भली प्रकार जानते हैं । उनको मालूम है कि वायु मंडल

की समतुल्यता भंग होने से ही आंधी, तूफान आदि का आविर्भाव होता है। जब कुछ परमाणु हलके और कुछ भारी होजाते हैं तो उनकी समानता नष्ट होजाती है। जहां समानता नष्ट हुई, वहीं अशान्ति का जन्म हुआ।

एक बढ़ई मेज़ बनाता है। लकड़ी का पृष्ठभाग खुर्दरा होता है। वह रंदे से उसको छीलता है। फिर हाथ फेरता है, फिर छीलता है। वह चाहता है कि मेज़ का तलभाग मृदु होजाए। उस पर हाथ रुके नहीं। यह कब होगा? उसी समय जब कि पृष्ट भाग में समानता आजाएगी। उसका औज़ार काम नहीं देता। अणुवीक्षण यंत्र से देखने योग्य दरार रह ही जाते हैं, वह उनकी पूर्ति रोग़न द्वारा करता है। अब उस पर मज़े में हाथ चलता है। यह गुण समतुल्यता में ही है।

किसी तालाब के किनारे चले जाइए। देखिए जल शान्त है। कहीं लहर का नामो निशान नहीं। एक पत्थर उठाकर जल में फेंक दीजिए, अब लीजिए लहरों का आनन्द। जलकी शान्ति भंग होगई। एक लहर दूसरी लहर पैदा करती है। उसका असर सारे तालाब पर पड़ता है।

उपरोक्त उदाहरण हमको मनुष्य समाज की अशांति के कारणों को समझने में बड़ी भारी सहायता देंगे ।

ईश्वर की दृष्टि में मनुष्य मात्र बराबर हैं । उसके न्याय के अनुकूल सब मनुष्यों को बराबर अवसर उन्नति करने के लिए मिलने चाहियें । उसको किसी व्यक्ति विशेष व जाति विशेष से द्वेष नहीं । उस ने सब के लिए बराबर सामान दिए हैं । मनुष्य क्योंकि कर्म करने में स्वतंत्र है, वह किसी का गुलाम नहीं, इसलिए उसके फल का निश्चय अपने कर्मों द्वारा होता है ।

मनुष्यों का एक समुदाय जब किसी उद्देश्य को सामने रखकर संघ का स्वरूप ग्रहण करता है तो उसको समाज कहते हैं। मनुष्यसमाज का मुख्य सिद्धान्त यह है कि जीवनोद्देश्य की सिद्धि के लिए बराबर अवसर सब सभ्यों को मिलने चाहियें । इसका नाम सामाजिक समतुल्यता है । इसके अनुसार समाज की दृष्टि में सब सभ्य बराबर हैं । जो समाज इस मुख्य सिद्धांत पर चलता है उसकी उन्नति लगातार बिना किसी रुकावट के होती चली जाती है । सब सभ्य एक दूसरे की सहायता करते हुए चलते हैं । उनमें भ्रातृभाव की वृद्धि होती है। जैसे शरीर के भिन्न भिन्न अंग, अपने जुदा

जुदा गुण, स्थिति रूप रखते हुए भी एक उद्देश्य 'शरीरोन्नति' की पूर्ति करते हैं और इससे उनकी भी वृद्धि होती है। इसी प्रकार आदर्श समाज के सभ्य, समाज की सेवा करते हुए अपनी उन्नति करते हैं और अन्त में समाज के मोक्ष से सबका मोक्ष हो जाता है।

समाज में अशान्ति कब फैलती है?

जब समाज के कुछ स्वार्थी लोग अपने दूसरे भाइयों को पीछे छोड़ अपनी मुक्ति की चेष्टा में रत हो जाते हैं, जब वे समाज से पीछा छुड़ा योग साधनार्थ जंगलों में चले जाते हैं, जब अकेला अकेला मनुष्य अपनी अपनी अपनी उन्नति की चिन्ता में मस्त हो पर्वत की कन्दराओं में जा छिपता है उस समय समाज के आत्मिक जगत में अशान्ति की लहरें उठती हैं।

क्या एक अकेली आत्मा को मोक्ष की सिद्धि हो सकती है? हरगिज़ नहीं। जब एक मनुष्य स्वयं कुछ सीख नहीं सकता; भाषा नहीं बना सकता; किसी प्रकार की उन्नति समाज के बिना नहीं कर सकता, तो भला यह कब सम्भव है कि उस अकेले को नजात मिल जाय अथवा मुक्ति की प्राप्ति हो। स्मरण रखिये, यदि डूबेंगे तो सभी डूबेंगे और तरेंगे तो सभी तरेंगे। क्या मोक्ष पूर्ण शान्ति का नाम नहीं है? क्या पूर्ण शान्ति

ब्रह्माण्ड में हो सकती है जबकि हमारे साथी मनुष्य अविद्या के गहरे गढ़े में गिरे हुए हैं ? कदापि नहीं। मनुष्य तो स्वार्थी है। चाहता है कि उस अकेले की मुक्ति होजाए, बाकी चाहे सड़ जांए। परन्तु परमात्मा के नियम बड़े ज़बरदस्त हैं। उसको अपने सब पुत्र पुत्रियों का ध्यान है। उसने इसीलिये मनुष्य को सामाजिक सभ्य बनाया ताकि, उसके हृदय में सेवा, बलिदान, उपकार आदि उच्च गुणों का समावेश हो। मनुष्य के मोक्षका सीधा और सचा मार्ग यही है कि वह सब की उन्नति में अपनी उन्नति जाने। सबको बराबर समझ सबकी उन्नति के सम उपाय करे। जैसे धर्म का आरम्भ समाज से होता है वैसे ही मोक्ष भी समाज के साथ ही होसकता है। यदि अपना मोक्ष चाहते हो तो अपने स्वदेशी भाइयों के मोक्ष की चिन्ता करो। जब उनकी मुक्ति होजाए तो संसार के मोक्ष की चिन्ता करो। जब तक सब भाइयों के दुख दूर नहीं होंगे तब तक हमारे दुख भी दूर नहीं हो सकते। क्योंकि हम सब एकही पिता के पुत्र हैं। इसलिये जो लोग अपने भाई सभ्यों को नीच समझते हैं और उनको बराबर के अधिकार नहीं देते वे अपनी हानि आप कर रहे हैं। समाज की अशान्ति का मुख्य कारण

भारा ही स्वार्थ है। देशकी समतुल्यता नष्ट होजाने से ही आज यह अधोगति हो रही है। ऐक्यता हो नहीं सकती, झगड़े अवश्य रहेंगे, जब तक समाज अपने सब सभ्यों को समदृष्टि से नहीं देखेगा। आप चाहते हैं कि बिना समता किए ही शान्ति हो जाय। भला ऐसा कैसे संभव है। समाज के परमाणु हलके और भारी हो रहे हैं और आप उनमें समतुल्यता चाहते हैं। असंभव! परमाणुओं की बनावट, गुण, प्रकृति में भेद रहेगा; यह तो होना ही चाहिए। इन भेदों के होते हुए इन में समता आने की आवश्यकता है; इसी में उन्नति का रहस्य है। आप न्यायशील बनिए। दूसरों को अपने जैसा समझिए, उनको बराबर अवसर दीजिये, शान्ति का राज्य स्वयं होजायगा। खाली बातूनी धर्म से कैसे शान्ति हो सक्ती है।

समाज में शिक्षा का सबके लिये बराबर प्रबन्ध होना चाहिये। क्या ग़रीब क्या अमीर, क्या ब्राह्मण क्या क्षत्री, क्या भङ्गी क्या चमार, क्या धोबी क्या तेली, समाज के सन्मुख सब बराबर हैं। सबकी सन्तान के लिये स्कूलों का प्रबन्ध होना चाहिये। कोई बच्चा शिक्षा से वञ्चित न रहे। स्कूलों, पाठशालाओं में ऐसे नियम हरगिज़ न बनाए जांय जिनसे परस्पर में द्वेष फैले,

जिनसे बच्चों के हृदयों की समानता नष्ट हो; या वर्णा-धर्मी झगड़े फैलावें। ऐसे विचार शिक्षक लोग कदापि प्रकट न करें, जिनसे कोमल हृदय बालकों को चोट लगे। उन्हें यही शिक्षा दी जाय कि वे एक माता के पुत्र हैं, और उस पूज्या माता का नाम 'भारत' है। नीच ऊंच का भाव कदापि भी न आने पावे, क्योंकि यही फूट का मूल है। जब सबको बराबर शिक्षा मिलेगी तो जो योग्य होगा वुही उच्च पदवी से विभूषित होगा। इसमें किसी को शिकायत का मौक़ा न मिलेगा और सभी सभ्य आनन्द प्रसन्न रहेंगे। आज तो उनको अवसर ही नहीं दिया जाता, उन्नति हो तो कैसे हो। अपने मतों के झगड़े छोड़ सब देश के बच्चों को बराबर समझो। सबके लिये एक जैसे स्कूल खोलो। हिन्दु, मुसलमान, जैनी, ईसाई, आर्य्यसमाजी मतों के स्कूल न खोलो, बल्कि भारतीय विद्यालय बनाओ जिनमें सबको बराबर की शिक्षा मिले और देश में बुद्धिस्वातंत्र्यवादी, सहनशील भारतीय उत्पन्न हों। यदि आज आप हमारे इस नम्र निवेदन को नहीं सुनेंगे, समय आवेगा,-आ रहा है कि आपको स्वयं इस पद्धति के अनुसार कार्य्य करना पड़ेगा।

विचारने की बात है कि भङ्गी, चमार, मोची, नम-शूद्र, रहतिए आदि अस्पर्श वर्णों के मनुष्यों के लिए

'भारत' इस शब्द के क्या अर्थ होसक्ते हैं ? उनके हृदयों में 'भारत' शब्द क्या भाव पैदा कर सकता है ? क्या भारत उनकी माता है ? क्या माता के अन्य पुत्र उन को अपने जैसा समझते हैं ? 'भारत' शब्द उन के लिए कोई नवीन सन्देशा नहीं देता। उनके सामने इसका कोई आदर्श नहीं हो सकता। कैसे हो ? क्या उन्होंने कभी 'भारत' की गोद देखी है ? क्या अन्यायी भाई उनको माता का दूध पीने से वञ्चित नहीं रखते ? माता के ये करोड़ों बच्चे मृतवत हैं। उनसे यदि हम भारत का दुख दूर करने के लिये कहते हैं तो वे घृणा से हमारी ओर देखते हैं। उनका इसमें क्या अपराध है। अपराध हमारा है जिन्होंने उनके साथ घोरतम अन्याय किया है। उनको सामाजिक अधिकार नहीं दिए हैं। इसीसे आज अशान्ति है; इसी से आज देश उदास है; जाति रो रही है।

उठो, ईश्वरदत्त सन्देशासुनो ! इसको गाओं गाओं में लेजाओ और कहो कि मनुष्यमात्र ईश्वर की दृष्टि में बराबर और भाई हैं। उनको बतलाओ कि भारत हम सब की माता है। इसके ऐश्वर्य्य, इसकी सम्पत्ति, इसके दुख, इसके सुखमें सबका बराबर हिस्सा है। उनके गले मिलो और निवेदन करो कि उनके अधिकार हमारे जैसे हैं। उनसे घृणामत

करो। समाधिकार की दुन्दुभि बजाओ और सबको यही शिक्षा दो कि भारत पर सब भाइयों का बराबर अधिकार है। जो कुछ अन्याय पहले हो चुका, हो चुका। अपनी भूलों को स्वीकार करो। हृदयों से घृणा, द्वेष को निकाल दो। अपनी अपनी भेड़ें मत बढ़ाओ, बल्कि "Justice to all and privileges to none" "सबके साथ न्याय और किसी की भी रिआयत न की जाय" यह आदर्श सामने रखो। सबको बराबर समझो; बराबर अवसर सबको उन्नति के दो। यह हरगिज़ ख्याल न करो कि कोई मनुष्य अकेला मोक्ष प्राप्त कर सकता है। योग, प्राणायाम, पुरश्चरण सभी निष्फल हैं जब तक वह सामाजिक अन्याय हमारे सामने है। समाज की समतुल्यता हमारा आदर्श है। इसी में हमारा कल्याण है। समाज के सभी सभ्यों के हित में हमारा हित है। वही मनुष्य सच्चा योगी, सच्चा तपस्वी है जिसने मनुष्य समाज की सेवा में अपना जीवन लगाया है। वही सच्चा साधु महात्मा वैरागी है जिसने समाज, देश, जाति के दुखों को दूर करने में अपना सर्वस्व अर्पण कर दिया है। समाज के सब सभ्यों को बराबर समझ उनके साथ न्याय का बर्ताव करो; उनको उन्नत करने की चेष्टा करो; उनके जीवन को सुखी बनाओ; उनको शिक्षा दो; उनसे प्रेम करो; उनके स्वत्व मत छीनो, उनकी निर्बलताओं का

नाजायज़ फायदा मत उठाओ, उनके साथ सहानुभूति करो। स्मरण रखो इसी में आपका, आपके देश का, आपकी जाति तथा मनुष्य मात्र का सच्चा हित है।

पञ्चम खण्ड।

वाक् स्वतंत्रता

" Why has God given us this tongue for ?
It is to speak the truth. For, He is the Truth and we live for Him."

अर्थ

प्रश्न—ईश्वर ने हमें वाणी क्यों दी है ?
उत्तर—यह सत्य बोलने के लिये है। क्योंकि ईश्वर सत्य स्वरूप है और हमारा जीवन उसी के निमित्त है।

संसार में जितने मत मतान्तर प्रचलित हैं, जितने बड़े बड़े सुधारक हुए हैं सभी ने इस बात को मुक्त कण्ठ से स्वीकार किया है कि सत्य बोलना धर्म है। सत्य को उन्होंने सर्वोपरि धर्म माना है। जहां जहां धार्मिक सभायें हैं, वहां से यही आवाज़ हमारे कान में आती है—"सत्य बोलो। सत्य बोलो।" सभी सोसाइटियों के उपदेशक भी अपने

श्रोताओं को यही उपदेश देते हैं। चारों ओर इसी की गूंज सुनाई देती है।

परन्तु इसका परिणाम क्या ?

उन्हीं उपदेशकों के चरित्रों को देखिये, धार्मिक सोसाइटिओं के नेताओं के कार्यों की पड़ताल कीजिए। क्या वे स्वयं सत्यवादी हैं ? नहीं।

फिर यह मकारी क्यों ? नित्यप्रति संध्या करने वाले, नमाज़ पढ़नेवाले, गिरजों में जाने वाले ऐसे झूठे क्यों ?

क्या आपने कभी इन प्रश्नों पर विचार किया है ?

विचार कीजिए। खाली 'सत्यंवद। धर्मं चर' कह देने से कोई सत्यवादी नहीं हो सकता। इसका बड़ा भारी सम्बन्ध मनुष्य के सामाजिक प्रतिवेश के साथ है। समाज के उन नियमों का, जिन पर उसका जीवन और मृत्यु निर्भर है, उसके चरित्र के साथ गहरा सम्बन्ध है। भला जिस समाज की वाक्स्वतंत्रता छिन गई हो उसके सदस्य सत्य कैसे बोल सकते हैं ? वे अपने धर्म का पालन कैसे कर सक्ते हैं ? क्या उनके लिये "सत्यं वद। धर्मंचर" का उपदेश वृथा नहीं है ?

यह तो छुटी बात है। एक धार्मिक व्याख्यान दाता किसी नगर में उपदेश देने गया। लेकचर के नोटिस निकले। विषय था-ब्रह्मचर्य्य। अच्छी खासी भीड़ हुई।

उपदेशक महाशय ने लोगों के दुर्बल शरीर देख. उनको खूब आड़े हाथों लिया, और कहा कि:—

"ब्रह्मचर्य्य न रखने से तुमलोगों की यह दुर्दशा हुई है। तुम लोग व्यभिचारी हो। अपने शरीर देखो। तुम लोगों को लज्जा आनी चाहिये। इत्यादि"

डेढ़ घण्टे तक व्याख्यान होता रहा। एक वृद्ध महाशय से न रहा गया। उसने खड़े होकर कहा:—

"सुनिए पण्डित जी! हम लोगों को तो पेटभर खाने को नहीं मिलता। आप हमें व्यभिचारी बतलाते हैं। हमारे शरीर एक महीने में हट्टे कट्टे हो जांय यदि दो वक्त पेट भर अन्न मिले। यहां खाने को नहीं है और आप, अपनी पीट रहे हैं।"

बुड्ढे के कथन का बहुत अच्छा प्रभाव पड़ा, क्योंकि वह सब का प्रतिनिधि था। उसने वह बात कही जो सब अनुभव कर रहे थे। वही सच्चा कारण था भी।

यही दशा 'सत्यं वद' की है। उपदेश देने वाले बहुत हैं पर बीमारी का सच्चा इलाज करने वाले डाक्टर नहीं मिलते। नुसख़े बाज़ अमृत धारा बहाने वाले बहुत मिल जाते हैं। ऐसी दशामें सत्यका प्रचार कैसे हो? आवश्यक है कि हम सबसे पहले सामाजिक मशीनरी के सिद्धान्तों को समझें; उसकी बनावट तथा गति का

ब्योरा जानें। सामाजिक विज्ञान के जाने बिना धार्मिक उपदेश निकम्मे हैं। जिन नियमों के आश्रित होकर सामाजिक चक्र चलता है उनके जाने बिना भला समाज की व्यवस्था कैसे होसकी है? कदापि संभव नहीं।

यदि 'सत्यंवद' का प्रचार करना चाहते हो तो पहिले इस बात की पड़ताल करो कि 'सत्य' के रास्ते में रुकावटें कौनसी हैं। कोई मनुष्य शौक़से झूठ नहीं बोलता, जो बोलते हैं वे मानसिक व्याधियों से ग्रसित होते हैं। अधिकांश मनुष्य इसलिये झूठ बोलते हैं क्योंकि उनकी वाक्‌स्वतन्त्रता छिन गई है। वे सत्य बोल नहीं सकते। उनको ज़बरदस्ती झूठ बोलना पड़ता है। समाज की आर्थिक तथा राजनैतिक दशा ही ऐसी होती है कि झूठ के बिना उनका जीवन निर्वाह कठिन है। लोगों का नाक में दम होजाता है। अब विचार करना है कि वाक्‌स्वतन्त्रता का घोर शत्रु कौन है? कौनहै जो सामाजिक सभ्यों से ज़बरदस्ती पाप कराता है? हम एक छोटासा उदाहरण देकर इस विषय पर अधिक प्रकाश डालते हैं।

फरज़ करो कि समाज के किसी सदस्य के हाथ में समाज का कर्मसूत्र आगया है; समाज की कुछ शक्ति उसको मिल गई है। शक्ति के घमण्ड में वह कई एक अन्याय युक्त बातें कर देता है। अब यदि

कोई न्याय प्रिय सज्जन उसके विरुद्ध आवाज़ उठाता है तो शक्ति का अभिमानी उसको दवाने के लिए यथा साध्य चेष्टा करेगा। वह हरगिज़ नहीं चाहेगा कि कोई उसका भण्डा फोड़े; या उसकी पोल खोले। सत्य सत्य बातें पबलिक को मालूम होने से उसकी शक्ति छिन जायेगी। इस न्याय और अन्याय के जद्दोजहद में वाक्स्वतंत्रता का गला घोंटा जाता है और यदि अन्याय का पक्ष बलवान हुआ तो सत्य का भण्डा कुछ काल के लिए गिर जाता है।

यह एक साधारण सा उदाहरण है। इस से पता लग सकता है कि वाक्स्वतंत्रता का घोर शत्रु अन्याय है। समाज के किसी अंग की, किसी दशा के अन्तरगत, जब वाक्स्वतंत्रता छिन जाती है तो समझ लेना चाहिए कि अन्याय के गुप्तचर समाज में घुस कर शरारत कर रहे हैं। लोग वहां इशारों से बातें करने लगते हैं; वे घुसर घुसर करने की आदत डाललेते हैं; उनका साहित्य दोरंगा हो जाता है। लेखों, कविताओं, व्याख्यानों में उनके नेता, सत्य बातें कहने से डरते हैं। खुशामद, चापलोसी, मक्कारी, दग़ाबाज़ी ऐसे दुर्गुणों की क़द्र होने लगती है। भीरू, कायर बड़ेमिआं बन जाते हैं। धर्म, अधर्म का रुप

ग्रहण कर लेता है। असली धर्म से लोग भूतकी तरह भागते हैं और बातूनी धर्म का राज्य चतुर्दिक व्यापक हो जाता है।

ऐसा होना स्वाभाविक है। वाक्स्वतंत्रता, उन्नति तथा धर्म का प्राण है। जितनी दुनिया भर की बुराइयां हैं वे अकेले 'झूठ' के अन्तरगत हैं,। मनु ने कहा है:—

" नास्ति सत्यात्परो धर्मः नानृतात्पातकं परम्।"

" सांच बरोबर तप नहीं और झूठ बरोबर पाप।

जाके हृदय सांच है ताके हृदय आप॥ "

यह उपदेश अक्षरशः ठीक है। परन्तु जब समाज के सदस्यों की वाक्स्वतंत्रता ही छीन ली जाए तो वहां धर्म, कर्म कैसा ? धर्म का पालन वहां हो नहीं सकता; धर्म के उपदेश ऐसे लोगों के लिए वृथा हैं। जब वे अपने हृदय के भाव प्रगट नहीं कर सकते, जब उन्हें सत्य बोलने की स्वतंत्रता नहीं तो वे धर्मात्मा कैसे हो सकते हैं ? उस समाज में अवश्य ही दुर्गुणों का समावेश हो जायगा। वहां खुशामद, चापलोसी, धूर्तता, बहरूपियापन आदि नाना प्रकारके रोग समाज को घेर लेंगे। मीनापन के विचार सर्वसाधारण में फैल जायेंगे।

का इसमें क्या अपराध है ? ये तो व..

होने के स्वाभाविक फल हैं। इस दयालु भगवान ने बड़ी कृपा कर मनुष्य को वाक्स्वतंत्रता दी है । उसकी आज्ञा है कि हम धर्मात्मा बनें और अपने इस अधिकार द्वारा उन्नति करें। इसी कारण मनुष्य के हितैषी सज्जनों ने समाज के हितचिन्तनार्थ सदा इस अधिकार की रक्षा की है; अन्याय के बरखिलाफ वे सदा युद्ध करते रहे हैं । मनुष्य समाज के इतिहास का पाठ करने से हमें पता लग सकता है कि वाक्स्वतंत्रता कैसा अमूल्यरत्न है । इसकी रक्षा करना प्रत्येक नर नारी, बाल वृद्ध का मुख्य कर्तव्य है । यह वह अधिकार है जिसके छिन जाने से मनुष्य का धर्म कर्म सब नष्ट हो जाता है । विद्वान दूरदर्शी सज्जन, इसको प्राणों से प्यारा समझ, सदा इसकी रक्षा पर कटिबद्ध रहे हैं। प्राचीन काल में जो कुछ उन्नति समाज ने की थी, वह सब इसी अधिकार की रक्षा के कारण हुई थी । भविष्य में यदि धर्म की रक्षा हो सकेगी तो वाक्स्वतंत्रता द्वारा ही हो सकेगी ।

कई एक भाई वाक्स्वतंत्रता अर्थात् Freedom of Speech के विरोध में यह दलील दिया करते हैं:—

"समाज में शान्ति कायम रखने के लिए यह आवश्यक है कि सभ्यों को वाक्स्वतंत्रता न दी जाए । नहीं तो उद्धत लोग झूठी मूठी बातें फैला सर्व साधारण

को बहका कर समाज में विप्लव मचा सकते हैं।"

क्या यह दलील युक्ति संगत है ? शान्ति की पुकार मचाने वाले इन भाइयों से कोई पूछे कि आपके सिर पर शान्ति स्थापन करने का सेहरा किसने बांधा है ? आपको शान्ति स्थापन करने की शक्ति किसने दी है ? यदि आप स्वयं ही मनमाने निरंकुश बन बैठे हैं तो यह आपको ज़बरदस्ती है। अच्छा साहेब, आपकी इस सीनाज़ोरी के सामने कुछ समय के लिए सिर झुका, यदि हम यह मान भी लें कि कुछ मूर्ख लोग वाक्-स्वतन्त्रता का नाजायज़ फायदा उठा लेते हैं तो भला यह कहां की बुद्धिमत्ता है कि 'कुछ' के लिए 'सर्व' का अधिकार छीन लिआ जाए ? उद्धत लोगों को दण्ड दीजिए, समाज उनका कोई प्रबन्ध करे। पर यह कहां का न्याय है कि समाज के सारे निरपराध सदस्य घोर तर अन्याय की शृङ्खला में बांध दिए जांए।

ऐसी ऐसी दलीलें उन्हीं भाइयों को अच्छी लग सकती हैं जिन्हें अपने अधिकारों का ज्ञान नहीं; जो सामाजिक सिद्धान्तों से बिलकुल अनभिज्ञ हैं; जो अपने आपको मनुष्य नहीं समझते। हमतो अपने आपको अमृतपुत्र मानते हैं और सबके बराबर अपने अधिकार समझते हैं। वाक्स्वतंत्रता हमको ईश्वर से मिली है। समाज

ने हमें यह रत्न नहीं दिया। जो वस्तु हमको अपने पिता परमात्मा से विरासत में प्राप्त हुई है उसपर किसी का क्या अधिकार हो सकता है ? हमारा यह स्वत्व है। किसी को कोई हक हमारा स्वत्व छीनने का नहीं। हम समाज में अपनी उन्नति करने के लिए आते हैं, न कि अपने आपको बेचने के लिए। आप चाहते हैं हमको गुलाम बनाना। आप आज्ञा दें तो हम बोलें, और वह भी आपकी इच्छा के अनुकूल। भला यह कहां की सभ्यता है। पिंजड़े में कैदी पक्षी भी स्वेच्छानुकूल बोल सकता है और आप हमारा जीवन उससे भी पतित बनाया चाहते हैं। ऐसा कदापि नहीं होगा।

कैसा अस्वाभाविक जीवन उस पुरुष का है जिसको अपने मानसिक विचार प्रकट करने की आज़ादी नहीं। जहां वह जाता है, जिससे वह मिलता है, सर्वत्र शंका का भूत उसके साथ साथ डोलता है। रेल में बैठाहुआ वह अपने भाई मनुष्यों से बातें करता हुआ डरता है। वह किसी पर विश्वास नहीं कर सकता। यदि कोई प्रेम से भी उसका हालचाल पूछता है तो उसके कान खड़े होजाते हैं और वह अपने प्रश्नकर्त्ता को गौर से देखने लगता है। वह सभा और समाजों में जाता हुआ डरता है। वह अपने शुभ विचार दूसरों पर प्रकट नहीं कर सकता। अपने भाई बन्धुओं पर उसे विश्वास नहीं

रहता। करे तो क्या करे, जाए तो कहां जाए, मिले तो किससे मिले।

ए मनुष्य समाज! ज़रा अपनी ओर देख। अपने पुत्र पुत्रियों की वाक् स्वतंत्रता की रक्षा कर। उनका स्वाभाविक जीवन बना। आंखें खोल कर उनकी गिरी हुई अवस्था अवलोकन कर। वे मक्कार हो गए हैं। उन्होंने सत्य बोलना छोड़ दिया है। वे ईश्वर भक्त बन नहीं सकते। वे धार्मिक हो नहीं सकते। भला वे अपने उच्चविचार कैसे फैला सकते हैं? भला तेरी सन्तान शुद्ध इतिहासवेत्ता कैसे हो सकती है? अच्छे अच्छे उन्नति मूलक ग्रंथ लिखे नहीं जासकते; विद्या विशारद नीतिज्ञ पैदा नहीं हो सकते; साहित्य की छटा फैल नहीं सकती। ये सब बातें तभी होंगी जब तेरी सन्तान का स्वाभाविक जीवन बनेगा। आज तो यह कठपुतली सी हो रही है। आजतो यह मिट्टी के माधो की भांति है। यह केवल सिरहिलाना ही जानती है। क्या ऐसी सन्तान से तेरा भविष्य उच्च बनेगा? कभी नहीं।

प्यारे बन्धुओ! हमारी आवाज़ को सुनो। अपनी वाक्स्वतंत्रता की रक्षा करो। यदि आप में से कुछ ऐसे हैं जो ईश्वर को नहीं मानते, उनको अपनी वाणी के यथार्थ गुणको जानना चाहिये। यदि वाणी केवल

हृदय के भाव प्रकट करने का साधन है तो इसके यह अर्थ हैं कि यह सत्य बोलने के लिये है। क्या आज आपको सत्य बोलने की आज़ादी है? सोचिए। क्या आपकी स्वाभाविक ज़िन्दगी है? विचारिए। क्या आप कमोने विचारों की व्यापकता नहीं देखते। देखते हैं? तो इसका उपाय क्यों नहीं करते। मझेमें इधर उधर क्यों घूम रहेहैं। आपको ये खेल तमाशे, विवाह शादी, नाच रंग, कैसे सूझतेहैं? आप को खाना कैसे अच्छा लगता है? क्या यह लज्जा की बात नहीं कि जिस सत्य की महिमा गाते हमारा गला नहीं थकता, जिस सत्यको हम अपना सर्वोपरि धर्म माने उसी सत्य का एक मात्र साधन वाक्स्वतन्त्रता नष्ट हो जाए और हम हाथ पर हाथ रखे बैठे रहें! कितने आश्चर्य की बात है। जिस एक मात्र अधिकार की नींव के ऊपर उन्नति की इमारत खड़ी होसकी है, जिस के पवित्र प्रभाव से सरस्वती देवी का आह्वान हो सका है, उस धर्मपीठ वाक्स्वतन्त्रता का गला हमारे सामने घोंटा जाए और हम चितर चितर देखते रहें!

यह सब इसी लिए है कि हम वाक् स्वतंत्रता की महत्ता नहीं जानते। हम इस अधिकार की महिमा नहीं समझते। हम को यह भी मालूम नहीं कि यह हमारा

अधिकार है। हमारे लिए 'वाक्स्वतंत्रता' नयाशब्द है। किसी पुराने पण्डित जी से इसकी परिभाषा पूछिये; नये पढ़े लिखों से इसकी व्याख्या करवाइये? धर्म के उपदेशकों से पूछ देखिए; ऐसे विरले वीर निकलेंगे जिन्हों ने इस ज्ञान की उपलब्धि की है। बहुत कम शिक्षित सज्जन हैं जो इसका ब्योरा समझते हैं। यही कारण है कि समाज के सदस्य आज भेड़ों की भांति चल रहे हैं। क्योंकि जहां वाक्स्वतंत्रता नष्ट हुई, वहीं गुरुडम का प्रवेश हुआ। वाक्स्वतन्त्रता गुरुडम का घोर शत्रु है। गुरुडम की जड़ जम नहीं सकी, जहां वाक्स्वतन्त्रता हो। आज समाज में गुरु लोगों की भरमार है; गुरुडम का निरङ्कुश राज्य है। किसी को विचार स्वातंत्र्य नहीं। ज़रा कोई महाकवि कालिदास की एक भूल तो दिखा दे, पूज्यपाद रामचन्द्र जी का कोई दोष तो निकाल दिखावे, बस, गुरुडम का पिशाच उनके पीछे पड़ जायेगा। सुनिए बेतुकी गालियां! यह क्यों? इसीलिए कि समाज ने हमारी वाक्स्वतंत्रता छीन हमको दास बनालिया है। समाज के धर्मान्ध नेता चाहते हैं कि हम सत्य बोलना छोड़ दें-हम अपने हृदय के सत्य सत्य भाव प्रकट न करें। वे हमको ज़बरदस्ती अपने पीछे चलाया चाहते हैं। वे अपने आप को सामाजिक मर्यादा के ठेकेदार समझते हैं। वे साहित्य

में कोई नवीनता नहीं चाहते।

भला विचार कीजिए कि जिस समाज में-"अन्धेनैव नीयमाना यथान्धाः" की परिपाटी है वहां के लोग 'वाक्स्वतंत्रता की महत्ता कैसे जान सकते हैं? विचार स्वातन्त्र्य उनके लिए कोई अर्थ नहीं रखता। "बाबा वाक्यं प्रमाणम्" ही उनके लिए सब कुछ है। वे 'हां हजूर, हां हजूर' ही कहना जानते हैं; उनकी नस नस में गुलामी आजाती है। 'जो हुकुम' उनके लिए स्वाभाविक होजाता है। उच्च अधिकारी को, वे ईश्वर तुल्य समझते हैं; उसकी आज्ञाउल्लङ्घन उनके लिए पाप है। वह आज्ञा चाहे कैसी ही कुत्सित क्यों न हो, उनके लिए वह ईश्वरीय हुक्म है। इसमें उनका अपराध भी क्या है। जब धर्मोपदेशक लोग हमको गुरुडम का उपदेश देते हैं और हमारी मुक्ति इसी में बतलाते हैं कि हम हुक्म के बन्दे बने रहें तो विचारी वाक्स्वतंत्रता को कौन पूछता है। हमारी मानसिक दशा ही दासत्वरूप होजाती है। सिर से पैर तक सारा पुतला 'दास' इस शब्द का वाचक हो जाता है। वहां 'निर्भरता' का असीम राज्य छा जाता है। सामाजिक, मानसिक, शारीरिक, तथा कलाकौशल संबंधी सभी विभाग निर्भरता (Dependence) के आश्रित हो जाते हैं। वह समाज नहीं रहता। उसके सदस्य पशु हो जाते हैं और वे केवल

भारवाहकों का काम देते हैं।

इसलिए, हे मनुष्य समाज के हितैषिओ ! यदि आप शिक्षा के पक्षपाती हैं तो वाक्स्वतंत्रता के पहले पक्षपाती बनो । यदि आप शिक्षा का प्रचार करना चाहते हैं तो पहले वाक्स्वतंत्रता की रक्षा कीजिए। यदि आप धर्म का प्रचार करने की इच्छा रखते हैं तो पहले वाक्स्वातंत्र्य को बचाइए । इसके बिना आपके सारे उद्योग निष्फल जायँगे, आपका किया कराया धूल में मिल जायगा । अपने शिक्षित सदस्यों को देखो; अपने बी० ए० एम० ए० भाइयों की मानसिक दशा पर दृष्टि डालो। क्या उनकी शिक्षा उनके लिए अथवा समाज के लिए उपयोगी हुई है? क्या उनका जीवन ग्रामोफोन के तुल्य नहीं हो रहा ? क्या उनकी शिक्षा लाभ की अपेक्षा हानिकारक नहीं बनरही है ?

ज़रा अपने पुराने पण्डितों को देखो! गुडम के भूतने उनकी क्या दुर्दशा की है । क्या वे किसी काम के योग्य हैं ? क्या उनकी शिक्षा से देश का कुछ उपकार हो रहा है ? आज उनकी दशा कैसी दीन है । बेचारे न इधर के, न उधर के। ईर्षा, द्वेष, लोभ, प्रमाद, उनको घेरे हुए हैं। देखिए कैसे जकड़े पड़े हैं । क्या वे हिल जुल सके हैं ? अवश्य। पर अपनी मरज़ी से नहीं । हा ! कैसी शोचनीय अवस्था है।

स्मरण रखिए। वाक्‌स्वतंत्रता के बिना शिक्षा एक भयानक व्याधि है। यह आवश्यक नहीं कि शिक्षित पुरुष वाक्‌स्वतंत्रता का पक्षपाती ही हो। शिक्षा भी दो प्रकार की हो सक्ती है-स्वाभाविक और अस्वाभाविक। वाक्‌स्वतंत्रता-रहित शिक्षा, स्वार्थी, धूर्त, खुशामदी, हीजड़े, कठपुतलियां पैदा करती है; वाक्‌स्वतंत्रता-सहित शिक्षा से शुद्धचरित्र स्पष्टवक्ता, सत्यवादी, साहसी, उद्योगी, विचारशील मनुष्य उत्पन्न होते हैं। इसलिए हम सबको इस अमूल्यरत्न, इस ईश्वरदत्त अधिकार से प्रेम करना चाहिए। इसकी रक्षा अपना कर्तव्य समझना चाहिए। क्योंकि इसी पर हमारी भावी आशायें निर्धारित हैं।

* * * * * * *

"If slavery is not wrong, nothing is wrong."

"Civilization is liberty, slavery is barbarism; civilization is intelligence, slavery is ignorance."

— R. I.

अर्थ।

यदि दासत्व में कोई बुराई नहीं तो संसार में कुछ भी बुरा नहीं।

सभ्यता स्वतन्त्रता है, गुलामी जंगलीपन है; सभ्यता विज्ञता है, गुलामी अज्ञानता है।

षष्ठ खण्ड।

धार्मिक-स्वतंत्रता।

"Religion is alright as long as it helps to produce better men and women, but when it catches the fanatical proselyting spirit, it is a curse then."

—Modern Wisdom

"Look here! You are perfectly free to believe what you think the best for you, but you have no right to infringe the liberties of other people."

—Straight Talk.

अर्थ

जिस मतविशेष की शिक्षा द्वारा शुद्धचरित्र नर, नारिआं उत्पन्न हों, वह मत सदाही श्रेय है। परन्तु जब उसके अनुयाइओं के सिरपर भेड़बुद्धि का भूत सवार होजाय तो वह मत नहीं रहता, बल्कि बवा होजाती है।

इधर देखिए! आपको पूर्ण अधिकार उस सम्प्रदाय के सिद्धान्तों को मानने का है जिनको आप अपने लिए अच्छा समझते हैं। परन्तु यह आपको हक़ नहीं कि आप दूसरों की स्वतंत्रता में विघ्न डालें।

—सीधी बातें

यदि मनुष्य की सभ्यता तथा उन्नति के इतिहास की भले प्रकार जांच पड़ताल की जाय तो उसमें धर्म्म सम्बन्धी झगड़ों का भाग बहुत अधिक मिलेगा। मनुष्य समाज की जितनी शक्ति धार्मिक गोरखधन्धे सुलझाने में खर्च हुई है उतनी और किसी कार्य्य में नहीं हुई। मनुष्य अपनी आरम्भावस्था से ही धर्म का बड़ा पक्षपाती रहा है और उसने सदासे ही सांसारिक बातों की अपेक्षा धर्म को उच्चतर समझा है। इसलिए समाज के आरम्भकाल से जो नियम समाज शासन के बनाये गये थे उनमें धर्म को सर्वोपरि स्थान दिया गया; बल्कि यहां तक कि समाज और धर्म का आपस में दूध शक्कर सा सम्बन्ध होगया।

राष्ट्र अथवा समाज की ऐसीस्थिति में धार्मिक स्वतंत्रता का कोई स्थान नहीं। ऐसी समाज के सब सदस्यों को एक ही धर्म मानना पड़ता है, उनको एक ही मत के सामने सिर झुकाना पड़ता है। योरप के बड़े बड़े राष्ट्रों में सोलहवीं सदी तक यही अवस्था थी। भारतवर्ष में मुसलमानों के राज्यशासन कालमें धर्म और राष्ट्र एक ही सूत्रमें बद्ध थे। राजा अशोक के समय में बुद्धमत राज्य धर्म हो गया था,

परन्तु बुद्ध की शिक्षा में सहनशीलता की मात्रा अधिक होने के कारण समाज की व्यवस्था में कुछ ऐसी अड़चन नहीं पड़ी। इसके विपरीत योरप तथा भारतीय मुसलमानशासन काल में धर्म और राष्ट्र की ऐक्यता से बड़े बड़े भयङ्कर उत्पात मचे और रक्त की नदियां बहीं।

धर्म और राष्ट्र की ऐक्यता से ऐसा क्यों हुआ? आइये पहले हम इस प्रश्न पर विचार करें और तब आगे बढ़ें।

मनुष्य के अन्दर उन्नति करने के अङ्कुर मौजूद हैं। यदि मनुष्य को स्वतंत्रता सहित शिक्षा मिलती रहे तो वे बीज बहुत शीघ्र फूलते फलते हैं। यदि शिक्षा न मिले तो भी वे धीरे धीरे सामाजिक अनुभव द्वारा बढ़ते रहते हैं। जब किसी राष्ट्र का संगठन और उसकी व्यवस्था किसी ख़ास 'मत' द्वारा की जाती है तो इसका अभिप्राय यह है कि उस राष्ट्र के सदस्य उसी मत के सिद्धान्तों को स्वीकार करें। यदि वे उससे विपरीत विचार रखते हों तो उनके साथ बुरा बर्ताव किया जाता है—जैसे रोमन केथोलिक फ्रांस ने फ्रांसीसी प्रोटेस्टेन्ट लोगों के साथ अन्याय किया था; या मुसलमान बादशाह लोग हिन्दुओं पर जज़िया लगा उनके साथ कुत्सित व्यवहार करते थे; या जैसे भारतियों ने अपने ज़माने में शूद्रों पर अत्याचार किया था। राष्ट्रों की बागडोर धार्मिक नेताओं के हाथ में होने से सब कार्य्य

उनकी सम्मति द्वारा किए जाते हैं। परिणाम यह होता है कि धर्मान्धनेता लोग अपने विरोधी सदस्यों को कष्ट दे, उनको अपनी ओर लाने का यत्न करते हैं। वे इसको बड़ाभारी पुण्य कार्य्य समझते हैं। स्पेन के पादरी इसी धुन में अपने विरोधी सदस्यों को दुस्सह कष्ट दिया करते थे। मनुष्य चूंकि तर्क करता है इसलिए समाज के सभी सदस्य एक जैसे सिद्धान्त रख नहीं सक्ते। मतभेद होना अत्यावश्यक है। परन्तु इस सत्यासिद्धान्त को पादरी मुल्लाः तथा पण्डित लोग नहीं समझते थे। इसी कारण 'धर्म और राष्ट्र' की एकता ने संसार में ऐसे ऐसे उत्पात मचाए और उन्नति के रास्ते में बाधायें डालीं।

अट्ठारहवीं शताब्दी में वैज्ञानिक विद्या का प्रचार योरप में होने से वहां के लोगों में जाग्रति होने लगी। विद्वान वैज्ञानिकों के निस्स्वार्थ परिश्रम से बुद्धि स्वातंत्र्यवाद का जन्म हुआ। यद्यपि राष्ट्रीयव्यवस्था में धार्मिक गोरखधन्धों का बल पहले की अपेक्षा बहुत कुछ घट गया था, लेकिन तिसपर भी योरप के बड़े बड़े राष्ट्र मतों के हानिकारक पक्षपात में फंसे हुए थे। अब जब सर्वसाधारण में स्वतंत्रता के विचार फैलने प्रारम्भ हुए और संयुक्त राज्य अमरीका तथा फ्रांस ने प्रतिनिधि सत्ताक राज्य की घोषणा दी तो योरपीय समाज में एक नयी शक्ति का आवि-

भाव हुआ। लोगों को अपनी भूल का पता लगने लगा।
मतों का पक्षपात समाज के लिए हानिकारक है, इसकी
सत्यता उनके हृदयों पर खचित होने लगी। परिणाम
यह हुआ कि धार्मिक झगड़े बिल्कुल कम होगए और
धार्मिक सहनशीलता का ज़ोर बढ़ने लगा।

आज योरप और अमरीका की समाजों में मज़हबी
झगड़ों का अभावसा होगया है। वहां के लोग धार्मिक
स्वतंत्रता के असली महत्व को समझ गये हैं। वे आपस
में मज़हबी नुक़्तों के लिए सिर फटौअल नहीं करते।
उनके विद्यालयों में सब मतों के बालक पढ़ते हैं और
वे आपस में कभी भी धार्मिक दङ्गे नहीं करते। बल्कि
एक दूसरे के विचारों का आदर करते हुए प्रेमपूर्वक
विद्याभ्यास करते हैं। शिक्षक लोग भी ऐसे बुद्धि स्वातं-
त्र्यवादी हैं कि सब के विचारों को ध्यान से सुनते हैं,
सब को बराबर अवसर अपने विचार प्रकट करने का
देते हैं। परिणाम यह हुआ है कि वहां पर विद्या की
वृद्धि, आविष्कारों का आनन्द, वैज्ञानिक छटा दिन प्रतिदिन
फैलती जाती है। साथ ही सामाजिक उन्नति के असली
कारणों की ओर वहां के लोग अधिक ध्यान देने लगे
हैं। आर्थिक और राजनैतिक प्रश्नों का हल आज पाश्चात्य
संसार के सामने है। अपनी सारी शक्तिआं वे मनुष्य

समाज की उलझनों को सुलझाने में खर्च कर रहे हैं।

आइये, अब हम 'धार्मिक स्वतंत्रता' का सम्बन्ध अपनी वर्तमान भारतीय समाज के साथ करें और देखें कि यहां पर यह क्या क्या गुल खिलारही है।

भारतवर्ष में आज ऐसे शिक्षित लोग मौजूद हैं जिनका यह ख्याल है कि एक धर्म हुए बिना इस देश का कल्याण नहीं हो सकता। जो दिनरात इसी धुन में लगे रहते हैं कि अपनी भेड़ वृद्धि करें और दूसरे मतवालों को शुद्ध करें। हम कहते हैं—" शुद्ध करें। " क्योंकि उन शिक्षित सज्जनों की बुद्धि अनुसार उनके धर्म का विरोधी अशुद्ध है। इसलिए एक संयुक्त भारत करने के लिए वे सब को शुद्ध कर अपने मत में लाना चाहते हैं। देखिए इसका परिणाम। आज भारत मतों के झगड़ों का केन्द्र बन रहा है। हिन्दु, मुसलमान, ईसाई, जैनी, आर्य्य समाजी सभायें आपस में दल बांध शास्त्रार्थों की रङ्ग-भूमि में डटी हैं। एक दल दूसरे दल का शत्रु बन रहा है; एक दूसरे के खून का प्यासा है।

जाइये पंजाब में, और देखिये वहां की दशा। वह प्रान्त धार्मिक झगड़ों में अगुआ है। धर्मयुद्ध के मल्ल यहीं पर अधिक मिलते हैं। यदि आज यहां झटके का प्रश्न है तो कल वहां हिन्दी गुरमुखी का। कोई न कोई भया-

रक सूचना उस वीरभूमि में आती ही रहती है। उसका प्रभाव अड़ोसी पड़ोसी प्रान्तों पर भी पड़ता है। वह शक्ति, जो भारत के दुखों को दूरकरने का साधन बन सकी है आज एक दूसरे का हनन करने में लग रही है, और तिसपर भी यह सिद्धान्त कि भारत में एक धर्म हुए बिना ऐक्यता नहीं हो सकी। हा शोक!

क्या मनुष्य का सामाजिक सम्बन्ध मज़हबी है? क्या मनुष्य समाज मज़हबी रस्सी द्वारा संगठित हो सका है?

इन प्रश्नों का उत्तर 'हां' और 'न' दोनों में है। अज्ञानी, असभ्य, अशिक्षित समाज का संगठन मज़हबी बन्धनों द्वारा होसका है, हुआहै, और होरहा है। वहीं पर निरङ्कुश राज्य भी होता है; वहीं पर भेडिया धसानी भी होती है; वहीं पर एक ज़बरदस्त मनुष्य की पूजा भी होती है। परन्तु शिक्षित, तार्किक, हेतुवादी समा[illegible] व्यवस्था

तुल्यता भिन्न भिन्न धर्मों के रखने से नष्ट नहीं होती, बल्कि धार्मिक झगड़े तथा आर्थिक और राजनैतिक अत्याचार ही समाज की ऐक्यता में बाधा डालने वाले होतेहैं।

सुनिए। भारत में ऐसे हजारों गाओं हैं जहां हिन्दु मुसलमान भाइयों की भांति रहते हैं। एक दूसरे के विवाह शादी में योग देते हैं और प्रेमपूर्वक दिन काटते हैं। वहीं एक ऐसा उपदेशक भेज दीजिए जिसको भेदबुद्धि की बीमारी हो, फिर देखिए तमाशा। वहीं लट्ठ चलने लगेगा। उसी गाओं में यदि कोई महाजन किसी किसान पर अत्याचार करे, या कोई पटवारी सभ्यता की धुन में रिश्वत का बाज़ार गरम करे तो फिर भी वहां अशान्ति व्यापक हो जायगी। मनुष्य का पारस्परिक सम्बन्ध पहले भोजन सम्बन्धी है। आप दूसरे का टुकड़ा न छीनिए, मज़े में गुज़ारा होता चलेगा। इसके साथ स्वतंत्रता और स्वत्वभोग के अवसरों का सम होना भी अत्यावश्यक है। मुक्ति, नजात, स्वर्गप्राप्ति, पुनर्जन्म जीवब्रह्म, अनादि सृष्टि के सिद्धान्त तो फ़ुरसत के चोचले हैं। बैठे बैठे विचार किया करो। मनुष्य समाज का सगठन इन सिद्धान्तों पर निर्भर नहीं है। समाज की आर्थिक तथा राजनैतिक दशा न्यायानुकूल रखिए, सब को अपनी इच्छानुसार धर्म मानने दीजिए, फिर समाज के भोगों का आनन्द लूटिए। ऐसी

नक सूचना उस वीरभूमि से आती ही रहती है। उसका प्रभाव अड़ोसी पड़ोसी प्रान्तों पर भी पड़ता है। वह शक्ति, जो भारत के दुखों को दूरकरने का साधन बन सकी है आज एक दूसरे का हनन करने में लग रही है, और तिसपर भी यह सिद्धान्त कि भारत में,एक धर्म हुए बिना ऐक्यता नहीं हो सकी। हा शोक!

क्या मनुष्य का सामाजिक सम्बन्ध मज़हबी है? क्या मनुष्य समाज मज़हबी रस्सी द्वारा संगठित हो सका है?

इन प्रश्नों का उत्तर 'हां' और 'न' दोनों में है। अज्ञानी, असभ्य, अशिक्षित समाज का संगठन मज़हबी बन्धनों द्वारा होसका है, हुआहै, और होरहा है। वहीं पर निरकुश राज्य भी होता है; वहीं पर भेडिया धसानी भी होती है; वहीं पर एक ज़बरदस्त मनुष्य की पूजा भी होती है। परन्तु शिक्षित, तार्किक, हेतुवादी समाज की व्यवस्था मज़हबी सिद्धान्तों द्वारा नहीं हो सकी। वहां सामाजिक सदस्यों का सम्बन्ध स्वतंत्रता तथा सामाजिक समतुल्यता के नियमों द्वारा होता है। समाज की यह अवस्था उन्नत और अशिक्षित समाज की दशा जंगलीपन की होती है। यदि पक्षपात रहित होकर विचार करें और मनुष्य समाज के संगठित होने के असली कारणों की पड़ताल करें तो पता लगेगा कि समाज की सम-

तुल्यता भिन्न भिन्न धर्मों के रखने से नष्ट नहीं होती, बल्कि धार्मिक झगड़े तथा आर्थिक और राजनैतिक अत्याचार ही समाज की ऐक्यता में बाधा डालने वाले होतेहैं।

सुनिए । भारत में ऐसे हजारों गाओं हैं जहां हिन्दु मुसलमान भाइयों की भांति रहते हैं। एक दूसरे के विवाह शादी में योग देते हैं और प्रेमपूर्वक दिन काटते हैं। वहीं एक ऐसा उपदेशक भेज दीजिए जिसको भेदबुद्धि की बीमारी हो, फिर देखिए तमाशा । वहीं लट्ठ चलने लगेगा। उसी गाओं में यदि कोई महाजन किसी किसान पर अत्याचार करे, या कोई पटवारी सभ्यता की धुन में रिश्वत का बाज़ार गरम करे तो फिर भी वहां अशान्ति व्यापक हो जायगी । मनुष्य का पारस्परिक सम्बन्ध पहले भोजन सम्बन्धी है। आप दूसरे का टुकड़ा न छीनिए, मज़े में गुज़ारा होता चलेगा। इसके साथ स्वतंत्रता और स्वत्वभोग के अवसरों का सम होना भी अत्यावश्यक है। मुक्ति, नजात, स्वर्गप्राप्ति, पुर्नजन्म जीवब्रह्म, अनादि सृष्टि के सिद्धान्त तो फ़ुरसत के चोचले हैं । बैठे बैठे विचार किया करो। मनुष्य समाज का सगठन इन सिद्धान्तों पर निर्भर नहीं है। समाज की आर्थिक तथा राजनैतिक दशा न्यायानुकूल रखिए, सब को अपनी इच्छानुसार धर्म मानने दीजिए, फिर समाज के भोगों का आनन्द लूटिए। ऐसी

अच्छी यह व्यवस्था है कि इसमें सब का उपकार, सब का हित और सब की उन्नति है।

क्या भारत कभी एक धर्म में बद्ध हो सकता है? कदापि नहीं। जब तक हम मनुष्य हैं, शिक्षा ग्रहण करते हैं, सभ्यता के अनुगामी हैं, तब तक कभी भी ऐसा नहीं हो सक्ता। अंग्रेज़ों में एक कथन है–"Only dead and stupid do not change their opinions. केवल मुरदा और मूर्ख अपने विचार नहीं बदला करते।" एक मत कभी भी नहीं हो सक्ता। ख़ासकर धर्म सम्बन्धी बातों में भेद होना आवश्यक है। यदि ऐसा न हो तो इसके अर्थ यह हैं कि इस देश के लोग पशु हैं, वे विचार नहीं करते।

भारत में भिन्न भिन्न मतों का होना बड़े सौभाग्य की बात है। परन्तु हम यह चाहते हैं कि हमारे लोग धार्मिक स्वतंत्रता के असली तत्व को समझें और एक दूसरे के विचारों का आदर करें। उन्हें सामाजिक जिम्मेदारिओं का ज्ञान हो और वे अपनी अपनी उपयोगिता समझें। मतों की विभिन्नता के योग से भांति भान्ति के उन्नत विचार, नई नई विद्यायें, आविष्कार हो सक्ते हैं। क्योंकि जहां विभिन्नता है वहीं पर नवीनता का स्रोत है। एक ही तरह की वस्तु भला किस काम की? मनुष्य उससे यूं ही ऊब जाए। न, हम भारत में एक धर्म नहीं चाहते। भारत

रूपी उद्यान में भांति भांति के फूल, भांति भांति के वृक्षों की आवश्यकता है, तभी हमको तरह तरह के फल खाने को मिलेंगे। मगर एक बात सब से उच्च-इस बाग की रक्षा का काम सब भारतीय अपना कर्तव्य समझें। क्योंकि इसके बिना उद्यान उजड़ जायगा और वृक्ष सूख जांयगे। हम तो इस समय दूसरे वृक्षों को उखाड़ने में लगे हुए हैं। बाग उजड़ा चला जारहा है। लकड़ी, पत्ते, फल, फूल सब बरबाद हो रहे हैं। बचाइए, शीघ्र बचाइए।

भला विचार कीजिए कि एक आदमी मन्दिर में जाकर मूर्ति पूजा करता है, उस बेचारे को वहीं पर ईश्वर का आनन्द मिलता है। इसमें हमारी क्या हानि है? एक मनुष्य मसजिद में जाकर खुदा की परस्तिश करता है; इसमें हमारा क्या बिगड़ता है? एक गिरजे में जाकर ईसा-मसीह की आराधना करता है, वह हमारा क्या लेता है? एक ईश्वर को मानता ही नहीं, तो क्या हुआ? यदि ये सब सज्जन चुपचाप शान्ति से अपने अपने काम में लगे रहें और अपने दूसरे भाइयों की स्वतंत्रता में विघ्न न डालें तो समाज की उन्नति बराबर हो सकती है और सामाजिक चक्र मज़े में चलसकता है। परन्तु, यदि इसके विपरीत मन्दिर में जाने वाला, मसजिद में जाने वाले को बेवकूफ़ बनावे, और मसजिद का प्रेमी गिरजे वाले को

बुरा भला कहे, और गिरजे वाला दोनों को काफिर समझे तो फिर समाज की शान्ति भङ्ग होने में सन्देह ही क्या है। ऐसी दशा में तो ज़रूर ही दङ्गे फसाद होंगे। सिद्धान्त यह है कि प्रत्येक सदस्य धार्मिक स्वतंत्रता का पक्षपाती हो और अपने दूसरे भाइयों के साथ वैसा ही व्यवहार करे जैसा कि वह दूसरों से वर्ताव की इच्छा रखता है। जब हम यह• चाहते हैं कि कोई दूसरा हमारे पूज्य देवता अथवा पीर पैग़म्बर को गालिआं न दे तो हमारा यह पहला फरज़ है कि हम दूसरों के देवी देवत-ओं को बुरा भला न कहें। जो वात हम अपने लिए चाहते हैं वुही हमें दूसरों के लिए चाहनी चाहिए। सब कोअपना अपना धर्म प्यारा है। क्या यह अन्याय नहीं कि हम अपने लिए तो धार्मिक स्वतंत्रता चाहें परन्तु दूसरों के दिल दुखा कर प्रसन्न हों? कितने लज्जा की वात है।

यह नियम है कि जितना मनुष्य कम जानता है उतना ही अधिक वह अपने आपको विद्वान समझता है। जितना अधिक विद्वान मनुष्य होता जाता है, उतना ही वह अपनी अज्ञानता को समझने लगता है। थोड़ी विद्या भयानक होती है। यह मनुष्य को पक्षपाती, दुराग्रही, ज़िद्दी, वितण्डा वादी बना देती है। ऐसा मनुष्य,अपनी बुद्धि के सामने किसी का कुछ नहीं गिनता। जो कुछ वह मानता है उसके लिए वही

अकाट्य है। संसार के दूसरे विद्वान, धार्मिक नेता, सब उसकी दृष्टि में मूर्ख हैं। बस उसका धर्म, उसका मत, सर्वोपरि है; उसी में सब सत्य भरा है; उसके बाहर कुछ नहीं-शून्य। वह अपनी युक्तियों के सामने दूसरे की विद्या को तुच्छ समझता है। उसकी विद्या अपने ही धार्मिकनेता की बुद्धिपर खतम है। उससे बढ़कर न हुआ और न होगा। वह दूसरे मत वालों को गालियां देता है; उनको जाहिल समझता है।

ऐसे मनुष्य की दशा दया के योग्य है। उसको एक व्याधि है जिसको Orthodoxy कहते हैं। इसके अर्थ हैं मानसिक हीजड़ापन। ऐसे मनुष्य में नई बातें निकालने, समझने, देखने की शक्ति मारी जाती है। उसके दिमाग़ में कीड़े पड़ जाते हैं। इसका सबसे अच्छा इलाज यही है कि ऐसा मनुष्य नई नई पुस्तकें पढ़े, घूमे, फिरे, देशाटन करे। जितनी अधिक नई चीज़ें, भांति भांति के मत, तरह तरह के विचार, उसके जानने, पढ़ने, सुनने अथवा देखने में आवेंगे, उतनी जल्दी उसकी बिमारी दूर होगी। तब उसको पता लगेगा कि भिन्न भिन्न मतावलम्बी एक ही आदर्श को लिए हुए हैं। मार्ग एक ही है; सब का मुंह उसी की ओर है। भेद केवल दरजों में है। यदि हम समझते हैं कि कोई भाई हमसे नीचे है,

और हम उसकी सहायता करना चाहते हैं तो प्रेम से उसके साथ सहानुभूति कर, अपने हृदय को विशाल बना, उसको छाती से लगा, उसका दुःख दूर करने की चेष्टा करनी चाहिए। अपने से जहां तक होसके उसकी सेवा करें, उसको उचित शिक्षा दें, न कि उसके पूज्य देवताओं को गालिश्रां सुनायें। एक महापुरुष का कथन है:—

"By love you can conquer not by hatred"

"प्रेम से विजय प्राप्त हो सकी है घृणा से नहीं।" यहीआदर्श प्रत्येक देशहितैषी, समाज सेवक, ईश्वर भक्त, तथा दीनदार पुरुष का होना चाहिये।

इतना कथन करने के बाद अब हम धार्मिक स्वतंत्रताकी व्याख्या ज़रा विस्तार से करते हैं और उदाहरणों द्वारा इसकी महत्ता दर्शाने का यत्न करते हैं।

मनुष्य को ईश्वर ने स्वतंत्र बनाया है। जैसे वह काम करने में आज़ाद है वैसे ही वह स्वच्छानुकूल धर्म मानने में भी स्वतंत्र है। किसी को दूसरे के मत पर आघात करने का अधिकार नहीं, न ही दूसरे को ज़बरदस्ती अपने मत में लाने का हक़ है। मगर इसके साथ ही यह भी स्मरण रखना चाहिए कि समाज के किसी सदस्य को ऐसे सिद्धान्त मानने अथवा पालन करने का अधिकार नहीं जिनसे दूसरों की स्वतंत्रता में बाधा पड़े। उदाहरण के तौर पर होली को

ही ले लीजिए। जो आदमी, होली के दिनों अपने सिर में धूल मिट्टी डालना धर्म समझता है, उसको चाहिए कि घर में बैठकर अपना चाव पूरा करले। परन्तु यदि वह दूसरों की स्वीकृति विना उनपर राख मिट्टी फेंकना, गाली देना, या मज़ाक करना, अपना धर्म समझ, वैसा करने लगता है तो वह दण्ड देने के योग्य है। 'धार्मिक स्वतंत्रता' का सम्बन्ध मनुष्यकी अपनी शख्सीयत से साथ है। एक मनुष्य को पूर्ण अधिकार मूर्ति पूजा करने का है, परन्तु यह उसको हक़ नहीं कि वह मन्दिर में भोले भाले लोगों को लेजा कर उनका धन हरण करे, अथवा मन्दिर की आमदनी से व्यभिचार फैलावे। क्योंकि उसका अधिकार केवल अपने स्वत्व ही पर है, दूसरों के स्वत्व पर नहीं। जब एक मनुष्य धर्म के बहाने दूसरों का स्वत्व धोखे से हरना चाहता है तो उस समय उसकी गणना डाकुओं में हो जाती है। शासकों का कर्तव्य है कि ऐसे पुरुषों को दण्ड दें और समाज को उनसे बचावें। सुनिए:—

एक भारतीय गुरू घण्टाल ने इङ्गलेण्ड में आकर नये मत की स्थापना करनी चाही। इङ्गलिस्तान में धार्मिक स्वतंत्रता का अखण्ड राज्य है, इसलिए किसीने बाबाजी के काम में रोक टोक न की। परन्तु बाबाजी थे बड़े धूर्त, उन्होंने धर्म की आड़ में अबलाओं को फांसना चाहा।

वस फिर क्या था, पकड़े गये। बड़े घर में पहुंच कर सब धूर्तता निकल गई।

इस उपरोक्त घटना से, 'धार्मिक स्वतंत्रता' का सामाजिक संबंध भले प्रकार समझ में आसका है। आप अपने धर्म को मज़े में मानते जाइये, पर दूसरों से छेड़खानी न कीजिए; दूसरों को हानि मत पहुंचाइये। ऐसा कोई काम आप से न हो जो दूसरों की आज़ादी में विघ्न डाले। हमारे यहां बहुत से लोग आधी रात को बाज़ारों, गलियों में गाते हुए चले जाते हैं। उनको ज़रा भी दूसरों के आराम का ख्याल नहीं होता। काशी में हमारे आफिस के पास एक बड़ा भारी मन्दिर है। आधीरात के बाद, कोई डेढ़ बजे के करीब, दो तीन आदमी मिलकर तान उड़ाते तथा ज़ोर ज़ोर से बात करने लगते। हमने बड़ी मुशकिल से उनको बन्द किया। दूसरे रोज़ रात को फिर उन्होंने वैसाही किया। आखिर बड़ी कठिनता से हम उनको समझा सके। इसी प्रकार बाज़ार में रातके अढ़ाई बजे के करीब एक महात्मा घंटी हिलाते हुए किसी मन्दिर के दर्शन करने जाते हैं। उनको इतनी बुद्धि नहीं कि हम दूसरे सोनेवालों की नींद क्यों ख़राब करें। रातको बाज़ारों में प्रायः बदमाश लोग गन्दे अश्लील गीत गाते हुए चले

जाते हैं। उनका बुरा प्रभाव श्रोताओं पर पड़ता है, पर कोई उनको मना करनेवाला नहीं। लोग ऐसे गिर गए हैं कि वे एक दूसरे के अधिकारों को जानते ही नहीं। जैसे जंगली पशु वनों में धूम धाम चीत्कार किया करते हैं ऐसे ही यहां पर भी है।

जब हम मामूरगंज में रहते थे तो बहुधा रातको 'राम राम सत्त है!' की आवाज कान में पड़ती थी। मीठी नींद में सोते हुए लोगों के घरों के पास मुर्दे को लेकर निकलना और जोर जोर से 'राम रामसत्त' कहते जाना कैसा बुरा है। भला यह कहां की सभ्यता है? आप अपने मुर्दे को चुपचाप ले जाइए, घाट पर ले जाकर फूंक दीजिए। इस गुल गपाड़े से क्या लाभ तिसपर भी आधीरात के समय। परन्तु यहां धार्मिक स्वतन्त्रता के अर्थ लोग जानते ही नहीं। बहुत से बे समझ मुसलमान लोग अपने त्योहारों पर गोहत्या करते हैं इसलिए नहीं कि उनके धर्म में ऐसा लिखा है बल्कि इस लिए कि हिंदुओं को चिढ़ावें। इस भूल के कारण नित्य नये फसाद होतेहैं और दोनो दलों के लोग मारेजाते हैं। कैसी भारी अज्ञानता है? क्या गोहत्याके बिना इन का गुजारा नहीं हो सकता? यदि होसकता है तो फिर एक पशु के लिए इतने आदमियों को क्यों दुख देते हैं? केवल जहालत के कारण हम

कहते हैं कि जो धर्म आपस में लड़ादे; सिर कटवा दे; शत्रुता फैलादे; दंगे मचवादे, वह धर्म ही कैसा ? धर्म की नींव "प्रेम Love" परखड़ी है। आज कई ऐसे विद्वान् मुसलमान सज्जन हैं जो इसबात की पुष्टि करते हैं कि 'गोहत्या' उनके धर्म का अंग नहीं। वे दूसरे मतवालों से प्रेम करने का उपदेश देते हैं। ऐसे ही दूरदर्शी विद्वान सच्चे खुदापरस्त हो सक्ते हैं; वे ही सच्चे मुसलमान हैं।

यहांपर यदि हमसे कोई यह प्रश्न करे कि क्या आप अन्य भेड़ बकरी आदि पशुओं की हत्या के पक्ष में हैं ? हम कहेंगे—"नहीं।" इस अंश में हम वैष्णव हैं। हम मांसखाने के विरोधी हैं। परन्तु इस समय हमारा विषय भक्ष्याभक्ष्य पर विचार करना नहीं, हम केवल यह दिखलाने का यत्न कर रहे हैं कि हमारे प्यारे भारतीय बन्धु 'धार्मिक स्वतंत्रता' की महत्ता को नहीं जानते। जातीय त्योहारों पर थोड़ी थोड़ी बातों के लिए दङ्गा करना, दुकानें लूट लेना, माल जला देना, बड़ा भारी जंगलीपन है। स्मरण रखिए, ऐसे ऐसे घृणित कार्य्य केवल गुण्डे लोग धर्म की आड़ लेकर करते हैं। मुसलमानों और हिन्दुओं में कभी भी मज़हबी झगड़े न हों यदि हम सामाजिक विज्ञान का प्रचार करते हुए, मनुष्य के अधिकारों का सर्व साधारण में फैलावें।

आवश्यक है कि हम लोग बहुत शीघ्र इस ओर ध्यान दें ताकि राष्ट्रनिर्माण का कार्य्य न्याययुक्त सिद्धान्तों के अनुकूल हो ।

आइए, अब हम 'धार्मिक स्वतन्त्रता' के दूसरे पहलू पर विचार करें और उसके गुणदोष जानने का उद्योग करें ।

प्रत्येक मनुष्य अपने विचार प्रकट करने में स्वतंत्र है। फरज़ करो कि एक मनुष्य किसी धार्मिक पुस्तक को ईश्वरकृत नहीं मानता। उसको पूर्ण अधिकार. अपने ख़्यालात ज़ाहर करने का हैं । हमें ऐसे पुरुष से घृणा न करनी चाहिए; न ही उसको बुरा भला कहने का कोई हक़ हमें है। जबतक वह मनुष्य हमारे पूज्य देवताओं को गाली नहीं देता, हमारी क़ुरानशरीफ की अप्रतिष्ठा नहीं करता, तबतक वह अपराधी नहीं । हमें उसकी बात सुननी चाहिए; उसकी दलीलें समझनी चाहियें। जो सज्जन अपने धर्म के विरुद्ध कोई बात सुन नहीं सक्ते, अथवा उसपर विचार करने से घबराते हैं वे भारी बुज़दिल हैं। उनको अपने धर्म पर विश्वास नहीं होता । यदि हम दूसरों की बात तक नहीं सुन सक्ते तो हम उन्नति क्या ख़ाक कर सकते हैं ? आप अपनी कहिए; दूसरे की सुनिए—लेकिन प्रेमपूर्वक, गाली गलौज से नहीं । मनुष्य चाहे

किसी मज़हब को मानता हो, परन्तु यदि वह दूसरों को विचारस्वातंत्र्य का अधिकार नहीं देता तो हमारे निकट वह ईमान्दार नहीं। वह बड़ा भारी अन्यायी है। हमतो स्वतंत्रता के पक्षपाती हैं। इसी देवी की आराधना करते हैं। जो हम अपने लिए चाहते हैं वही हम दूसरों को देने के लिए तय्यार हैं। अपनी कहिए; हमारी सुनिए। तभी तो मज़ा आवेगा; तभी तो उन्नत विचार होंगे, तभी तो नये नये ग्रंथ लिखे जांएगे। भला स्वतंत्रता के विना कभी उन्नति हो सक्ती है? आजतक कहीं हुई है? असंभव। भला ऐसे मनुष्य किस काम के हैं जिनकी विचारशक्ति खूंटे से बन्धी हो? जो अपने धार्मिक विचार कहने से डरें। ऐसे मनुष्य कुछ नहीं कर सकते, उनकी बुद्धि का विकास नहीं हो सक्ता, वे मक्कार हो जाते हैं।

चाहिए।" खूब ! आत्मघात करते रहो । लेकिन उस बेचारे काभी क्या कसूर है, अभी धार्मिक स्वतंत्रता की उपयोगिता को लोग जानते नहीं । यदि हमारे धार्मिक विचार आपस में नहीं मिलते तो बस हुई शत्रुता ! सभा सोसाईटिओं में इन्हीं कारणों से भारी वैमनस्य फैल जाता है। पढ़े लिखे मुसलमान, नेशनल कांग्रेस को, हिन्दुओं की कांग्रेस कहते हैं । भला इस मज़हबी पक्षपात की भी कोई हद है। लोग धर्म से बाहर कोई बात सोच नहीं सके। लेकिन इन बेचारों का भी इसमें क्या अपराध ? जब हिन्दु लोग उठना बैठना, खाना पीना, सोना जागना, चलना फिरना, कपड़े पहनना उतारना, सभी हरकतें धर्म में शामिल करलेते हैं तो कांग्रेस बेचारी कैसे धर्म से बाहर हो सकी है । आवश्यक है कि हमारे लोगों में विश्लेषण (analysis) करने की बुद्धि आवे, हम लोग अभी विवेचना (discrimination) करना नहीं जानते। जो कुछ सामने आया, सब दाल दलिआ करके निगल जाते हैं । हमारा भी क्या अपराध है। भूख बड़ी जबरदस्त है, उसने हमारी होश भुलादी है ।

कहने का तात्पर्य यह है कि हमें धार्मिक भेदों को स्वाभाविक समझ उन पर अधिक ध्यान न देना चाहिए। ज्ञानवृद्धि के लिए ऐसे भेदों की बड़ी आवश्यकता है ।

परन्तु यह ख्याल हमें अपने दिलों से निकाल देना चाहिए कि अमुक धर्म के लोग बुरे हैं, वे काफर हैं, म्लेच्छ हैं। ऐसा धर्म, जो दूसरे लोगों की स्वतंत्रता छीने, उनको नीच बनावे, धर्म नहीं कहला सका। वह अन्याय का पुतला है। ऐसा धर्म मनुष्य समाज का शत्रु है। आप अपने लिए कुछ मानें—कुरान शरीफ के अनुकूल चलें अथवा अञ्जील के—हमें कुछ कहना नहीं है। परन्तु आपके ऐसा काम को, जो दूसरों पर आघात करे, उनके अधिकारों को छीने, उनको बुरा भला कहे, समाज कभी भी सहन नहीं कर सक्ती। हम कहते हैं वह मनुष्य नहीं, बल्कि पशु से भी बदतर है जो दूसरों पर ज़ुलम करने की इच्छा रखता है।

इसलिए हे भारत सन्तान! धार्मिक स्वतंत्रता की महत्ता समझ। आपस की मज़हबी लड़ाइयां छोड़। इन युद्धों ने बड़ी भारी हानि की है। उठ, स्वतंत्रता से प्रेम करना सीख। यह संसार एक बड़ा रमणीक उद्यान है, इसमें सबके लिए खाने को काफी फल हैं। आपस की मज़हबी लड़ाइयों से तेरा बाग उजड़ा चला जारहा है; वृक्ष बरबाद हो रहे हैं। देख, विचार, और अब भी सम्भल जा। यदि तेरा पड़ोसी मूर्तिपूजक है तो उससे

में जाता है तो उसके पैग़म्बर को बुरा भला मत कह। यदि वह ईसा का भक्त है तो उसके दिल को मत दुखा। देख, न्याय कर। सबको धार्मिक स्वतंत्रता दे। यदि तेरा कोई भाई ग़लती करता है तो उससे सहानुभूति कर, उसको योग्य शिक्षा दे। ऐसे स्कूल खोल, जहां उचित् शिक्षा का प्रबन्ध हो, जहां धार्मिक स्वतंत्रता सिखलाई जाए। अपने आपको कट्टर मत बना। दूसरों से द्वेष करना छोड़ दे। जो सुख तुझे दरकार है वुही सबके लिए चाहिए। जो आज़ादी तू अपने लिए पसन्द करती है, वुही सब के लिए पसन्द कर। सब धर्मों का मुंह परमात्मा की ओर है। हम सब उसी की ओर जारहे हैं। आओ, मिलकर, गाते हुए, हंसते खेलते, आनन्द करते उस प्रभु के पास चलें। पिता हमको प्रसन्न देख बड़े प्रसन्न होंगे। छाती से लगायेंगे, प्यार करेंगे। तब फिर वह पवित्र रत्न हम सब को मिलेगा- नजात, स्वतंत्रता, आज़ादी, Freedom. आह! वह दिन कैसा भाग्यवान होगा!

सप्तम खण्ड

शासनाधिकार।

—:o:—

"God is our King."

— Satya.

"Governments derive their just powers with the consent of the governed."

— T. Jefferson.

अर्थ

"परमात्मा हम सब का राजा है।"

"शासकों को, न्याय युक्त शक्तिश्रां, शासितों की इच्छा द्वारा ही मिलती हैं।"

—टी. जेफरसन

अब हम मनुष्य के उस अधिकार की ओर आते हैं जिसका सम्बन्ध पिछले छओं खण्डों से [illegible] है। मनुष्य का यह सर्वस्व है, जिसके ऊपर

यता रूपी इमारत खड़ी है। इसका नाम हमने शासनाधिकार रखा है। इसके अनुकूल, मनुष्य अपना आप राजा है; वह स्वयं अपना स्वामी है; उसके ऊपर शासन करने का अधिकार किसी को नहीं, अर्थात् शासन की शक्ति मनुष्य के अन्तरगत है।

यहां पर यह प्रश्न स्वाभाविक होगा कि यदि मनुष्य पर शासन करने का अधिकार किसी को नहीं तो फिर हम उसको सब जगह शासित क्यों देखते हैं और तिस पर भी अधिक समाजों में उसकी इच्छा के विरुद्ध? इस प्रश्न का उत्तर देने से पहले हम मनुष्य और समाज का पारस्परिक सम्बन्ध दर्शाना अत्यावश्यक समझते हैं। क्योंकि इन दोनों की स्थिति जाने बिना यह प्रश्न समझ में नहीं आयेगा। इसलिए पहले हम "मनुष्य और समाज" इसपर विचार करते हैं।

यदि एक अकेले मनुष्य को किसी धन धान्य पूरित द्वीप में छोड़ दिया जाए तो उसका चित्त वहां कदापि नहीं लगेगा। वह अकेला वहां कुछ नहीं कर सकता। जंगली जानवरों की भांति रहकर पेट पालेगा। प्राकृतिक पदार्थों को भोग नहीं सकेगा। क्योंकि इस के लिए दूसरों की सहायता की आवश्यकता है। यदि सब वस्तुयें बनी बनाई तय्यार भी पड़ी हों तो भी

सप्तम खण्ड

शासनाधिकार।

"God is our King."

— Satya.

"Governments derive their just powers with the consent of the governed."

— T. Jefferson.

अर्थ

"परमात्मा हम सब का राजा है।"

"शासकों को, न्याय युक्त शक्तिआं, शासितों की इच्छा द्वारा ही मिलती हैं।"

—टी. जेफरसन

अब हम मनुष्य के उस अधिकार की ओर आते हैं जिसका सम्बन्ध पिछले छओं खण्डों के साथ है। मनुष्य का यह सर्वस्व है, जिसके ऊपर मनुष्य की स्वतं-

मता रूपी इमारत खड़ी है । इसका नाम हमने शास-नाधिकार रखा है । इसके अनुकूल, मनुष्य अपना आप राजा है; वह स्वयं अपना स्वामी है; उसके ऊपर शासन करने का अधिकार किसी को नहीं, अर्थात् शासन की शक्ति मनुष्य के अन्तरगत है ।

यहां पर यह प्रश्न स्वाभाविक होगा कि यदि मनुष्य पर शासन करने का अधिकार किसी को नहीं तो फिर हम उसको सब जगह शासित क्यों देखते हैं और तिस पर भी अधिक समाजों में उसकी इच्छा के विरुद्ध ? इस प्रश्न का उत्तर देने से पहले हम मनुष्य और समाज का पारस्परिक सम्बन्ध दर्शाना अत्यावश्यक समझते हैं। क्योंकि इन दोनों की स्थिति जाने बिना यह प्रश्न समझ में नहीं आयेगा । इसलिए पहले हम "मनुष्य और समाज" इसपर विचार करते हैं।

यदि एक अकेले मनुष्य को किसी धन धान्य पूरित द्वीप में छोड़ दिया जाए तो उसका चित्त वहां कदापि नहीं लगेगा । वह अकेला वहां कुछ नहीं कर सकता । जंगली जानवरों की भांति रहकर पेट पालेगा। माकृतिक पदार्थों को भोग नहीं सकेगा। क्योंकि इस के लिए दूसरों की सहायता की आवश्यकता है । यदि सब वस्तुयें बनी बनाई तय्यार भी पड़ी हों तो भी

उस अकेले को वह स्थान अच्छा नहीं लगेगा । अंजील में लिखा है कि जब परमेश्वर ने आदम को इस रम्य जगत में छोड़ दिया तो वह अकेला इस निर्जन संसार को देखकर घबरा गया। घबराना ही था। इक्के दुक्के वृद्ध सुनसान मैदान में रोने लगते हैं, भला वह तो मनुष्य था। उस समय ईश्वर ने बड़ी दया कर उस की पसली में से एक सुन्दर नारी की रचना की। जब एक से दो हुये तब बेचारे आदम का काम चलने लगा। यह एक कथा है परन्तु इस से मानुषी प्रकृति और निर्भरता का पता लग सकता है। मनुष्य अकेला किसी काम का नहीं, उसकी किसी प्रकार की उन्नति नहीं होसकी। यद्यपि उसके अंदर सब शक्तियां मौजूद हैं, उनके अंकुर हैं, परन्तु वे कुछ काम नहीं आ सकते। उनका होना न होने के बराबर है। कई बार मनुष्य के बच्चे जंगली जानवरों की मान्दों में पकड़े गये हैं। वे वैसे ही जंगली थे। कहने का तात्पर्य्य यह है कि मनुष्य के अन्दर जो उच्च गुण हैं उनका विकास विना समाज के हो नहीं सक्ता। समाज के द्वारा ही मनुष्य अपने जंगलीपन को दूर कर दैवी शक्तिओं को ग्रहण करता है।

समाज क्या है ? मनुष्य का उसके साथ क्या

संबंध है ? अब हम इस पर विचार करते हैं।

समाज क्या है ? इसका उत्तर हम समाधिकार में दे चुके हैं परन्तु उसकी व्याख्या नहीं की थी। मनुष्य अकेला कुछ नहीं कर सकता, यह बात हमने थोड़े में इस खण्ड के आरम्भ में दर्शा दी है। मनुष्य की उन्नति के लिए समाज की आवश्यकता है। मनुष्य एक पुरज़ा है; समाज एक मशीन है जो कि बहुत से पुरज़ों के मेल से बनती है। एक अकेला पुरज़ा कुछ नहीं कर सकता परन्तु जब बहुत से पुरज़ों को संगठन कर मशीन बनाई जाती है तो उससे बड़े बड़े कार्य्य सम्पादन हो सक्ते हैं। आज संसार में मशीनों का ज़ोर है इसलिए मशीन की उपयोगिता समझाने की हमें वैसी ज़रूरत नहीं। हमारे पाठक आसानी से इस तुलना को समझ गये होंगे।

मशीन के पुरज़ बेजान होते हैं, उनमें प्राणपखेरू नहीं होता। मशीन चलाने वाला जिसप्रकार उनको जोड़ देता है वे वैसा ही काम देते जाते हैं जबतक कि वे बिल्कुल घिस न जांए। लेकिनसमाज रूपी मशीन के पुरज़ों में जीवन है; वे अपनी स्वतंत्र इच्छा रखते हैं। यद्यपि वे समाज पर निर्भर हैं, परन्तु वे स्वतंत्र हैं। उनके अपने अधिकार हैं जिनको लेकर वे समाज में प्रवेश क-

रते हैं उनकी कुछ शरतें होती हैं। पहली शरत यह है कि उनके अधिकारों की रक्षा की जायगी। उनके जो छः अधिकार हैं उनका ब्योरा हम दे चुके हैं। इन छः अधिकारों की रक्षा की शक्ति, प्रत्येक मनुष्य में मौजूद है, परन्तु वे आपसमें सामाजिक सम्बन्ध कर यह शरत करलेते हैं कि वे एक दूसरे की सहायता करेंगे।

ऐसी सहायता की आवश्यकता क्यों पड़ती है?

मनुष्य पहले बड़ा जंगली था। विकास सिद्धान्त के अनुसार उस का सम्बन्ध सब प्रकार के प्राणियों से रहा है और वह धीरे धीरे उन सब दरजों में से होकर गुज़रा है। इसलिए हम मनुष्य में वे सब आदतें पाते हैं जो पशुओं में मौजूद हैं। हिंसक जन्तु भूख से आतुर हो अपने बच्चों को खा लेते हैं, मनुष्य अपना सर्वस्व स्त्री, बालक आदि सब कुछ भूख के लिए वेच देता है। जंगली जानवरों की भांति हम भी स्वार्थ के वशीभूत हो अपने भाई, बन्धुओं का गला काट देते हैं; रुपये के लिए उनको दारुण दुख देते हैं; मजहबी भेदों के लिए उनको जीता जलादेते हैं; उनके अंग अंग कटवा देते हैं; उनको चरखे पर चढ़ा कर उनकी पस-लियां तोड़ देते हैं। पोलीस के आदमी वन्य पशुओं की भान्ति अपने शिकार को तड़पा तड़पा कर मारते हैं;

उनसे झूठ बुलवाते हैं; उनका शरीर जला देते हैं। कहां तक कहें। जैसे पशुओं में मादीन पर अत्याचार होता है—वह केवल बच्चे पैदा करने के लिए समझी जाती है—इसी प्रकार मनुष्य स्त्रिओं के साथ व्यवहार करते हैं। यदि पशुओं के साथ हमारा पहला सम्बन्ध न होता तो यह आदतें हम में न होतीं। इन बुराइओं का होना, यह प्रमाणित करता है कि हम उसी रास्ते से होकर गुज़रे हैं।

मनुष्य में पशु भाग है, इस बात से कोई इनकार नहीं कर सकता। मनुष्य का आदर्श यह है कि उसके अधिकारों की रक्षा हो, उसकी शक्तिओं का विकास हो। उसकी शक्तिओं का विकास होने पर ही उसका पशुभाग दूर हो सका है। यदि मनुष्य में पशुत्व न होता तो इतने लम्बे चौड़े बखेडे की ज़रूरत न थी। मनुष्य सबद्वारा आनन्द से अपनी उन्नति कर सकता था। समाज की आवश्यकता तो तब भी पड़ती, परन्तु यह सब कानून की खटपट मूल से ही दूर हो जाती—भाइयों की भान्ति प्रेम से सब लोग रहते। लेकिन पशुपन दूर करना है इस लिये समाज का संगठन होने के बाद एक ऐसे विभाग की आवश्यकता पड़ती है जो मनुष्य का पशुपन दूर करने तथा सबके अधिकारों की रक्षा करने में सहायक

हो । इस विभाग का नाम गवर्नमेन्ट अर्थात् शासन विभाग है । यह स्मरण रखना चाहिये कि शासन विभाग मनुष्य कृत है ईश्वर रचित नहीं । इस विभाग का जन्म मनुष्य के पशुत्व के कारण हुआ है। यदि किसी प्रकार मनुष्य का जंगलीपन दूर होकर वह सभ्य बन जाए तो शासन विभाग का भी अन्त होजाएगा । सब से सभ्य, शिक्षित, विवेकी, ज्ञान सम्पन्न वह समाज है जिसको गवर्नमेन्ट की ज़रूरत नहीं । जितनी ज़्यादा बलशाली गवर्नमेन्ट की आवश्यकता समाज को पड़े, उतनी ही अधिक वह समाज असभ्य, अशिक्षित, जंगली और पशुवत है । वह समाज चाहे लाख डींगें सभ्यता की मारे, अपना सम्बन्ध चाहे शेख़ सिद्दू से जोड़कर दिखावे, अथवा श्री रामचन्द्र जी से; अपने आप को ब्राह्मण कहे अथवा भंगी, यह कसौटी उच्च सभ्यता के पहचान की है कि वहां के लोग बिना शासन विभाग के काम , चला सकते हैं ।

यहां पर यह बतला देना हम उचित समझते हैं कि समाज की एक क़िस्म वह भी है जहां उन्नति बन्द होजाती है—वहां लोग केवल पेट भरते हैं और उनकी शासन प्रणाली साधारण होती है। ऐसी समाज सभ्य नहीं कही जा सकी । जो उद्देश्य समाज का है उसकी

पूर्ति होना अत्यावश्यक है। समाज अपनी मानसिक शक्तिओं को विकसित करती रहे; साहित्य का स्रोत बहता रहे; प्राकृतिक भोगों के सामान मिलें, आत्मिक उन्नति की धारा भी बहे, यह सब होते हुए फिर शासन का अभावसा होजाना समाज के लिए सौभाग्य की बात है।

कहने का तात्पर्य्य यह है कि समाज की बुराइओं को दूर करने तथा दुष्ट सभ्यों को दण्ड देने के लियेही शासन का जन्म है। वह शासन समाज का एक अङ्ग है और उसकी शक्ति समाज के अन्तर गत है, अर्थात् समाज ही शासन विभाग को शक्ति प्रदान करता है। या यूं कहिये कि मनुष्य अपनी इच्छा से कुछ शक्ति, तथा अधिकार एक विभाग को सौंप देता है, इस लिए कि वह विभाग अधिकार देने वाले की रक्षाकरे और उसके स्वत्व को बचावे। इस विभाग का संगठन समाज के सभ्य अपने प्रतिनिधिओं द्वारा करते हैं, और उनका सारा खर्च अपनी जेब से देते हैं। उसी खर्च का दूसरा नाम टेक्स है। यह 'कर' समाज के सदस्य अपनी अपनी आमदनी के मुताबिक शासनविभाग के नेताओं को देते हैं। इसी से शासनविभाग की मशीन चलती है।

हो। इस विभाग का नाम गवर्नमेन्ट अर्थात् शासन विभाग है। यह स्मरण रखना चाहिये कि शासन विभाग मनुष्य कृत है ईश्वर रचित नहीं। इस विभाग का जन्म मनुष्य के पशुत्व के कारण हुआ है। यदि किसी प्रकार मनुष्य का जंगलीपन दूर होकर वह सभ्य बन जाए तो शासन विभाग का भी अन्त होजाएगा। सब से सभ्य, शिक्षित, विवेकी, ज्ञान सम्पन्न वह समाज है जिसको गवर्नमेन्ट की ज़रूरत नहीं। जितनी ज़्यादा बलशाली गवर्नमेन्ट की आवश्यकता समाज को पड़े, उतनी ही अधिक वह समाज असभ्य, अशिक्षित, जंगली और पशुवत है। वह समाज चाहे लाख डींगें सभ्यता की मारे, अपना सम्बन्ध चाहे शेख़ सिद्दू से जोड़कर दिखावे, अथवा श्री रामचन्द्र जी से; अपने आप को ब्राह्मण कहे अथवा भंगी, यह कसौटी उच्च सभ्यता के पहचान की है कि वहां के लोग बिना शासन विभाग के काम चला सक्ते हैं।

यहां पर यह बतला देना हम उचित समझते हैं कि समाज की एक क़िस्म वह भी है जहां उन्नति बन्द होजाती है—वहां लोग केवल पेट भरते हैं और उनकी शासन प्रणाली साधारण होती है। ऐसी समाज सभ्य नहीं कही जा सक्ती। जो उद्देश्य समाज का है उसकी

होना अत्यावश्यक है । समाज अपनी मानसिक
ओं को विकसित करती रहे साहित्य का स्रोत
ा रहे, प्राकृतिक भोगों के सामान मिलें आत्मिक
ते की धारा भी बहे, यह सब होते हुए फिर
न का अभावसा होजाना समाज के लिए सौभाग्य
घात है ।

कहने का तात्पर्य्य यह है कि समाज की बुराइओं को
करने तथा दुष्ट सभ्यों को दण्ड देने के लियेही
न का जन्म है । वह शासन समाज का एक
है और उसकी शक्ति समाज के अन्तर गत है,
र्थात् समाज ही शासन विभाग को शक्ति प्रदान
ता है । या यूं कहिये कि मनुष्य अपनी इच्छा से कुछ
क्त, तथा अधिकार एक विभाग को सौंप देता है,
लिए कि वह विभाग अधिकार देने वाले की रक्षाकरे
र उसके स्वत्व को बचावे । इस विभाग का सगठन
ाज के सभ्य अपने प्रतिनिधिओं द्वारा करते है और
का सारा खर्च अपनी जेब से देते है । उसी खर्च
दूसरा नाम टेक्स है । यह 'कर' समाज के
स्य अपनी अपनी आमदनी के मुताबिक शासनविभाग
नेताओं को देते हैं । इसी से शासनविभाग की मशीन
लती है ।

शासन की उपरोक्त व्यवस्था से यह बात स्पष्ट है कि मनुष्य अपना स्वयं राजा है। राज्य करने की समाज में व्यापक है। समाज केवल, श्रमविभाग के सिद्धान्तानुसार उस काम को अपने कुछ योग्य प्रतिनिधियों के हाथ में सौंप देता है। जो समाज अपनी इच्छानुकूल कुछ सदस्यों को 'शासनशक्ति' सौंप सकता है उसे यह भी अधिकार है कि वह उसशक्ति को जब चाहे तब वापिस भी ले ले, अर्थात शासनविभाग समाज का एक प्रकार का सेवक है। यदि सेवक ठीक काम नहीं करता तो समाज को पूर्ण अधिकार है कि उसे बरखासत करदे और उसके स्थान पर अपनी इच्छानुकूल नया विभाग खोल ले।

अच्छा, अब हम शासनधिकार की अज्ञानता से जो नुकसान मनुष्य उठाता है उनका कुछ जिकर करते हैं। क्योंकि उनके जान लेने से इस अधिकार की प्रधानता भले प्रकार ज्ञात हो सकेगी। यह तो निश्चय है कि मनुष्य के लिए समाज का होना अत्यावश्यक है, और समाज का गुज़ारा विना शासन के हो नहीं सकता। मनुष्य, समाज और शासन इनका आपस में बड़ा घनिष्ट सम्बन्ध है। किसी समाज का काम बिना शासन विभाग के चल नहीं सकता। मनुष्य जिससमय समाज में प्रवेश करता

है और सामाजिक आदर्श की पूर्ति होना असंभव हो जाता है,।

कई एक अज्ञानी मनुष्य यह समझते हैं कि शासनाधिकार प्रत्येक मनुष्य का अपना स्वत्व नहीं । वह केवल बलशाली, सम्पत्तिवान पुरुष का अधिकार है। ऐसे लोग "Might is right, जिसकी लाठी उसकी भैंस" वाले असभ्यसिद्धान्त के मानने वाले है। ऐसे लोगों को—'Right अधिकार' इस शब्द के अर्थों का ज्ञान नहीं । जिससमय एक कमज़ोर मनुष्य एक बलवान मनुष्य के सामने सिरझुकाता है तो वह ऐसा कार्य्य अपनी इच्छा से नहीं करता । उसे, गले में पड़े हुए ढ़ोल को बजाना ही पड़ता है। वह बेचाराविवश होता है, कुछ कर नहीं सकता। इससे यह कदापि सिद्ध नहीं होता कि उस अन्यायी मनुष्य को अपने कमज़ोर भाई की गरदन दबाने का अधिकार मिल गया है । ऐसी समाज में जहां इस असभ्य सिद्धान्त को माना जाता है, सदा अशान्ति रहती है और उन्नति करने की शक्तिश्रां एक दूसरे को हनन करने में खर्च होती हैं । जिस कार्य्य सम्पादन से समाज में अन्याय, निर्धनता, दुख, अशान्ति फैले, भला ऐसी 'कार्य्यशक्ति' को अधिकार कैसे कह सकते हैं ? पशुओं में अलबत्ता 'बल' को ही प्रधानता दी जाती

⊛ अमरीका भ्रमण ⊛

मेरी २३०० मील यात्रा की राम कहानी।

जिस 'भ्रमण' की देश में इतनी मांग है, जिसके लिए मेरे मित्र मुझे बार बार पत्र भजते हैं, उस 'राम कहानी' का छपना आरम्भ होगया है। जून ६, १९१० को मैं अपने भ्रमण पर निकला था और फरवरी १९११ को मेरे भ्रमण का अन्त हुआ। इस बीच जो कुछ मेरे ऊपर बीती, जो कुछ मैंने देखा भाला, जो कष्ट मैंने सहे, उनका रत्ती रत्ती ब्योरा इस पुस्तक में छपेगा। मैं केवल नौ रुपए लेकर चला था। मेरे पास कोई सामान बिस्तरा आदि नहीं था। जंगल, पहाड़ों, बर्फानी मैदानों में मैंने कैसे रातें काटीं, सुनसान घाटिओं में किस प्रकार गुज़ारा किआ, उन सब घटनाओं का *याथातथ्य* वर्णन इस पुस्तक में छपेगा। साथ साथ अमरीका के ग्रामों, शहरों की सामाजिक ज़िन्दगी, वहां के नैसर्गिक दृश्यों की छटा भी दिखलाता चलूंगा। पुस्तक की पृष्ठ संख्या भूमिका सहित ६०० से अधिक होगी। इसके दो भाग होंगे। पुस्तक का मूल्य अढ़ाई रुपया रखा गया है। पहला भाग १५ दिसम्बर तक छप जायेगा। जो सज्जन ३१ अक्तूबर तक दाम भेज देंगे, उनको पुस्तक डेढ़ रुपए में मिलेगी।

यह नोटिस केवल इसलिए दिया गया है कि पुस्तक को सचित्र बनाने के लिए रुपया आजाए। क्योंकि इससे पुस्तक की उपयोगिता बढ़ जायगी। मेरे पास चित्र मौजूद हैं।

सत्यदेव।

राजर्षि भीष्म पितामह—श्रीयुत सत्यदेव जीने अमरीका जाने से पहल इस जीवन चरित्र को लिखा था। जरा इसका आनन्द भी लूटिए। मूल्य चार आने।

अमरीका के निर्धन विद्यार्थियों के परिश्रम यह पुस्तक मुर्दों में जान डाल देती है। भिक्षावृत्ति करने के दोष दिखाती है। स्वावलम्बन का पाठ पढ़ाती है। इसे पढ़िए। अपने छोटे छोटे बच्चोंको पढाइए। मूल्य चार आने।

जातीय शिक्षा—यह पुस्तक प्रश्नोत्तर ढगसे लिखी गई है। शिक्षा के महत्व पूर्ण प्रश्नपर विचार किया गया है। भारत में एकता कैसे हो सकी है ? इसको खूब अच्छी तरह से समझाया गया है। मूल्य एक आना।

यदि आप चाहते हैं। कि श्रीयुक सत्यदेव जी उत्तम उत्तम ग्रन्थ रचकर हिन्दी साहित्य की सेवा करें तो आप उनकी "ग्रन्थमाला" के पांच चार ग्राहक बढाकर उनको उत्साहित कीजिये। यह काम मिल मिलाकर करने का है। अकेला पुरुष कुछ नहीं कर सका।

निवेदक—

प्रबन्धकर्ता 'सत्य-ग्रन्थ-माला' काशी।

मेरानिवेदन।

पाठक महोदय ! सत्य ग्रंथ माला का पांचवा अङ्क सेवा में भेजता हू । इसकी वाट जोहते जोहते आप हैरान होगए होंगे । परन्तु इनमें मेरा तनिक भी अपराध नहीं । प्रेसपक् के कारण अपना प्रेस खोल नहीं सकता । हिन्दी के वाकी प्रेसों की दशा आप जानते ही हैं । यदि मुझे इन बाधाओं का पहले ज्ञान होता तो मैं सत्य-ग्रन्थ माला को मासिक रूप से निकालनेका नाम न लेता । क्योंकि इस देरी के कारणकई एक अविश्वासी सज्जनों के चित्त में मेरे प्रति शङ्कायें उत्पन्न होने लगती हैं और जब उनके मर्मभेदी पत्र आते हैं तो मुझे भारी व्यथा होती है। स्मरण रखिए, सत्य ग्रन्थ माला को मै अकेला चला रहा हूं। मेरे पास कोई सहायक तक नहीं । यदि मैं आपको 'माला' की ग्राहक संख्या बतलाऊ तो आप आश्चर्य्य में डूब जांए । इतने थोड़े ग्राहकों से 'माला' कैसे चलरही है ? उत्तर यह है कि 'माला' के ग्राहक थोडे हैं, पर प्रेमियों की संख्या अधिक है । उसी प्रेमके आश्रित होकर यह 'माला' चलरही है। "सत्य-ग्रन्थ-माला" अपने ग्राहकों को १२०० पृष्ठ साल में देगी । इस अङ्क को मिलाकर कुल ६७६ पृष्ठ आपकी सेवा में पहुंच चुके हैं। अब मैं 'क्रम[illegible]' दिखाने[illegible]